मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 47 ● वर्ष 5, अंक 11 ● जनवरी 2016 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

जलवायु संकट पर पेरिस सम्मेलन : फिर खोखली बातें और दावे 12

मार्क्स की 'पूँजी' को जानिये : चित्रांकनों के साथ 11

फ़ासीवादी वहशीपन की दिल दहलाने वाली दास्तान 14

विश्वव्यापी मन्दी और साम्प्रदायिक फासिस्ट आतंक के साये में बीता वर्ष

नये साल में मज़दूर वर्ग को फासीवाद की काली घटाओं को चीरकर आगे बढ़ने का संकल्प लेना ही होगा

सम्पादक मण्डल

2015 के विदा होने के साथ ही इक्कीसवीं सदी के डेढ़ दशक पूरे हो चुके हैं। वैसे तो इस डेढ़ दशक का एक-एक साल मेहनतकश अवाम के लिए तबाही और बरबादी ही लेकर आया, लेकिन गुज़रा साल इस मायने में ख़ास रहा कि आर्थिक शोषण-उत्पीड़न के साथ ही भगवा साम्प्रदायिक फ़ासीवादी आतंक अपने नंगे रूप में सामने आया जिसने इस देश के मज़दूर वर्ग और तरक़्क़ीपसन्द लोगों की ज़िन्दगी की घुटन को बर्दाश्त करने की सीमा से बाहर कर दिया। 2007 से जारी विश्वव्यापी महामन्दी पिछले साल भी दुनिया भर में मेहनत-मज़दूरी करके अपना पेट पालने वाले लोगों को छँटनी, बेरोज़गारी और महँगाई की मार से बेहाल करती रही। अपने अन्तकारी संकट से जूझ रहे विश्व पूँजीवाद ने दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में क्षेत्रीय युद्धों और आतंकी कार्रवाइयों को बढ़ावा देकर बर्बरता की नयी मिसालें क़ायम कीं। मुनाफ़े की अन्धी हवस में पर्यावरण की तबाही बदस्तूर जारी रही। ऐसा नहीं है कि इस पूँजीवादी लूट-खसोट, अत्याचार-अनाचार की विनाशलीला को जनता चुपचाप बर्दाश्त करती रही। दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में लोग पूँजीवादी हुक़्मरानों के ख़िलाफ़ सड़कों पर उतरे, हालाँकि किसी क्रान्तिकारी नेतृत्व के उभार के संकेत पिछले साल भी नहीं दिखे जिसकी वजह से कोई सशक्त पूँजीवाद विरोधी आन्दोलन नहीं खड़ा हो पाया। ऐसे में हमारे लिए पिछले साल के घटनाक्रम पर एक नज़र डालना लाज़िमी हो जाता है ताकि हम इस साल की चुनौतियों को रेखांकित कर सकें।

नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में केन्द्र की एनडीए सरकार ने पिछले साल अपने कारनामों से उन लोगों को भी भारत में फ़ासीवादी उभार की सच्चाई के बारे में सोचने को मजबूर कर दिया जो अभी तक इसको स्वीकार करने से कतरा रहे थे। इस फ़ासीवादी उभार के निशाने पर इस देश की आम मेहनतकश आबादी, अल्पसंख्यक और दलित-उत्पीड़ित समुदाय हैं। पिछले साल श्रम-सुधार के नाम पर बुर्जुआ जनवाद के अतिसीमित जनवादी दायरे को और ज़्यादा सिकोड़कर मज़दूरों के रहे-सहे अधिकारों को हड़पने की कोशिशें तेज़ हुईं। नवउदारवाद के पिछले ढाई दशकों में तमाम श्रम क़ानूनों को पहले की सरकारें काफ़ी कमज़ोर तो कर ही चुकी थीं लेकिन मोदी सरकार ने उन्हें बदलकर पूरी तरह पूँजीपतियों के पक्ष में कर देने की शुरुआत कर दी। यही वजह है कि देशभर में मोदी लहर की हवा निकलने के बावजूद पूँजीपति वर्ग को अभी अपने इस नुमाइन्दे पर पूरा भरोसा है। हालाँकि विभिन्न मुद्दों पर संसद स्थगित होने की वजह से पिछले साल श्रम क़ानूनों में संशोधन सम्बन्धी विधेयक को अभी तक संसद की मंज़ूरी नहीं मिल पायी। लेकिन केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय अब तक के सबसे बड़े श्रम "सुधारों" के तहत छह बुनियादी श्रम क़ानूनों में फेरबदल करने और 44 मौजूदा केन्द्रीय श्रम क़ानूनों को ख़त्म कर चार संहिताएँ बनाने के लिए कमर कस चुका है ताकि पूँजीपतियों को मज़दूरों के ख़ून का एक-एक कतरा निचोड़ने में बची-खुची बाधाएँ भी समाप्त हो जायें। इसके अतिरिक्त गुज़रे साल में महाराष्ट्र की भाजपा सरकार ने भी राजस्थान सरकार की ही तरह श्रम क़ानूनों को पूँजीपतियों के पक्ष में झुकाने की प्रक्रिया शुरू की।

पिछले कई सालों की तरह गुज़रे साल भी इस देश की मेहनतकश जनता महँगाई की मार से त्रस्त रही। मुद्रास्फीति के सरकारी आँकड़ों की बाजीग़री के ज़रिये सरकार महँगाई पर क़ाबू पाने का कितना भी दम भरे लेकिन इस देश के आम लोग अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से यह जानते हैं कि महँगाई ने उनका जीना दूभर कर दिया है। दाल, सब्ज़ी, तेल, अण्डे, दूध, दवाओं आदि की क़ीमतों में बढ़त पूरे साल बनी रही और देश की अधिकांश आबादी की पहुँच से दूर ही रहीं। रेल भाड़े और रसोई गैस की क़ीमतों में बढ़ोत्तरी की मार भी सबसे ज़्यादा मेहनतकश आबादी को झेलनी पड़ी। मोदी सरकार ने शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास जैसी बुनियादी सुविधाओं को पूरा करने की ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ते हुए मन्दी के दौर में भी पूँजीपतियों की तिजोरियाँ भरने का काम मुस्तैदी से किया। 'मेक इन इण्डिया' का गुब्बारा तो ख़ूब फुलाया गया,

(पेज 8 पर जारी)

अर्थव्यवस्था का संकट और मज़दूर वर्ग

इस साल के शुरू होते ही चीन का स्टॉक मार्केट धड़ाम से गिर गया और 'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंक में हमने जो अनुमान लगाया था वह सच निकला कि चीन का आर्थिक संकट का जल्द ही और गहरायेगा जो सारी दुनिया को मन्दी की गर्त में ले उतरेगा। भारत के शेयर बाज़ार के सटोरिये भी घबड़ाये बैठे हुए हैं। मेक इन इण्डिया का भारतीय शेर मज़दूरों का सस्ता ख़ून मुँह में लगाने के बावजूद चलने से पहले ही थक गया है। एक नये संकट के भय से यानी अपने ख़ुद के क़दमों से यह डर रहा है। यह अपने भविष्य को लेकर भयाक्रान्त है। लेकिन पूँजीपति वर्ग इतिहास से चाहकर भी सबक़ नहीं ले सकता है, क्योंकि इतिहास हमारे यानी मज़दूरों के पक्ष में खड़ा है। 1930 की आर्थिक महामन्दी को बुर्जुआ अर्थशास्त्री एक बुरा सपना मानते थे और इसे सूचना क्रान्ति के पहले की एक परिघटना मानते थे। उनका कहना था कि अब ऐसा नहीं होने वाला। परन्तु 1970 के बाद से अर्थव्यवस्था ने जिस तरह पलटी खायी है उसने तमाम चिन्तकों को सोचने पर मजबूर कर दिया। 1970 के बाद से हर नया साल अमीरों के बीच नये-नये आर्थिक संकट से उपजे नये डरों को पैदा करता रहा है। भले ही इस नये साल में भी मज़दूर उजड़ी हुई झुग्गियों में रह रहे हों, काम से निकाले गये, गोलियाँ और लाठियाँ खाते रहे हैं और दूसरी तरफ़ पूँजीपतियों की पार्टियों में डांस चलते रहे, फिर भी वे चिन्तित हैं। दुनियाभर के शासक ड्रोन, हाइड्रोजन बम, मिसाइलों और संगीनों से घिरे होने के बावजूद डरे हुए हैं।

असल में हर आर्थिक संकट मज़दूरों के जीवन में तबाही लाता है। आर्थिक संकट और उसके बाद मन्दी और अर्थव्यवस्था में ठहराव से बेरोज़गारी और ज़बरदस्त तबाही फैलती है। यह मज़दूरों के बड़े हिस्से को पूँजीवाद के ख़िलाफ़ संगठित होने का मौक़ा देता है। यही वह समय होता है कि जब हम संगठित होकर अपने लुटेरों पर हल्ला बोल सकते हैं। परन्तु इसका दूसरा पहलु भी है - आज दुनियाभर के मालिक सिकुड़ते मुनाफ़े और ठहरावग्रस्त व्यवस्था में जान फूँकने के लिए फिर से दुनिया को युद्ध में धकेल रहे हैं और अपने देश के अन्दर मज़दूरों के लिए फ़ैक्टरियों को यातना शिविर बना रहे हैं। इस काम को अंजाम देने के लिए जनता को आपस में बाँटा जाता है और यही पूर्वाधार बनता है फासीवादी उभार का। आर्थिक संकट की ज़हरीली कोख में ही फासीवादी कीड़े पलते हैं। जर्मनी में मज़दूरों, यहूदियों, कम्युनिस्टों के नरसंहार को अंजाम देने वाली नात्सी पार्टी के उभार का आधार आर्थिक संकट के दौर में जर्मनी के पूँजीपतियों का सिकुड़ता हुआ मुनाफ़ा था। यही वह सबसे ज़रूरी सबक़ है जो इतिहास से हमें मिलता है और जो मज़दूर वर्ग

(पेज 9 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

सरकारी कर्मचारियों को छात्रों-युवाओं-मेहनतकशों से अपनी लड़ाई को जोड़ना होगा

मैं हरियाणा रोडवेज में कर्मचारी हूँ। मैं पिछले कुछ महीनों से मज़दूर बिगुल का नियमित पाठक हूँ। मज़दूर बिगुल अख़बार लगातार देश में जारी उदारीकरण-निजीकरण की जनविरोधी नीतियों को उजागर करता रहा है और अभी हाल में केन्द्र में आयी मोदी सरकार भी इन्हीं जनविरोधियों नीतियों को ज़ोर-शोर से लागू कर रही है, इसका असर भी ज़मीनी स्तर पर नज़र आ रहा है। हरियाणा में भी भाजपा की खट्टर सरकार नये रोड ट्रांसपोर्ट एण्ड सेफ़्टी बिल के द्वारा रोडवेज के निजीकरण की तैयारी कर चुकी है। नयी परिवहन नीति के तहत अब राज्य में सरकारी बसें ख़रीदने के स्थान पर प्राइवेट कम्पनियों से बस एवं चालक किलोमीटर स्कीम पर अनुबन्ध पर लिये जा रहे हैं। जिसके बाद सरकार को नयी सरकारी बसें ख़रीदाने व पक्के कर्मचारी की भर्ती की ज़रूरत नहीं रहेगी। यानी धीरे-धीरे रोडवेज पूरे तरह प्राइवेट बस माफ़िया या टाटा जैसी बड़ी कम्पनियाँ के हाथ में आ जायेगा। इसका सबसे ज़्यादा नुक़सान आम मेहनतकश जनता का होगा क्योंकि निजी बसों में रियायती और कुछ अवसर पर मिलने वाली निशुल्क यात्रा नहीं मिलेगी। साथ ही रियायती पास सुविधा बन्द होने से विद्यार्थियों (विशेषकर लड़कियों) की शिक्षा पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। पक्के रोज़गार की उम्मीद लगाये नौजवान भी 7000-8000 हज़ार रुपये की सस्ती मज़दूरी पर ठेका मज़दूर की तरह खटने को मज़बूर होंगे।

असल में कांग्रेस से लेकर भाजपा सिर्फ़ पूँजीपतियों को मुनाफ़ा कमाने की नीतियाँ बनाती हैं। मौजूदा समय सरकार के पास नयी ख़रीदी 950 बसें खड़ी-खड़ी बर्बाद हो रही हैं, लेकिन सरकार कर्मचारियों की कमी दिखाकर अपना पल्ला झाड़ रही है। वहीं रोडवेज कर्मचारी भी निजीकरण के ख़िलाफ़ सड़कों पर उतरकर संघर्ष के लिए तैयारी कर रहा है, लेकिन हम कर्मचारी भी जानते हैं कि ये लड़ाई सिर्फ़ कर्मचारियों की नहीं है बल्कि हर छात्र-युवा से लेकर मेहनतकश जनता की है। इसलिए हम उनकी भागीदारी के लिए उनके बीच जाना होगा। तभी हम सही मायने में सरकार की जनविरोधी नीतियों का प्रतिरोध कर सकते हैं।

कृष्ण कुमार, गाँव शिमला, कैथल

प्रिय साथी, लाल सलाम! दिसम्बर 2015 का "मज़दूर बिगुल" एडवोकेट कुलदीप व्यास के सौजन्य से पढने को मिला| इस अंक में मज़दूर विरोधी क़ानून पारित कराने की सरकारी तैयारी बाबत और "उधारी साँसों पर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को जीवित रखने के नीम-हक़ीमी नुस्खे" आलेख पढकर ज्ञानवर्द्धन हुआ| फ़ॉक्सकॉन जैसी कुख्यात कंपनी को भारत में खुली छूट देना मज़दूर-विरोधी तंत्र का क्रूर-चेहरा उजागर करने वाली रपट है| रूसी-क्रांति के गुप्त अख़बार की कहानी "उड़न छापाखाना" कलम के सिपाहियों के अमूल्य-योगदान का जीवंत दस्तावेज है| क्रांतिकारी लेखक निकोलाई ओस्त्रोवस्की की पुण्यतिथि विषयक लेख में 'अग्नि-दीक्षा' देने वाले महानायक के बारे में 'गागर में सागर' की उक्ति सार्थक हुई| "आपस की बात" में कपिल का गीत "फाटल पैर बेवइया हो भैया गर्मी के दुपहरिया में" मज़दूर की पीड़ा की सटीक अभिव्यक्ति हुई| सभी रपटें तल-स्पर्शी हैं, मार्क्सवादी सोच को बेबाकी से उजागर करती हैं| संपूर्ण अख़बार पठनीय है, ज़रूरी लगता है| पत्रकारिता के इस गंभीर-कर्म में जुटे संपादक-मंडल के सभी साथियों, सभी लेखन-सहयोगियों, वितरण और व्यवस्था में लगे साथियों का सम्मिलित प्रयास प्रशंसनीय है| -

- मधु सूदन आज़ाद, जयपुर

नव वर्ष को समर्पित कविता

लोगों से सुना है,
कल फिर नव वर्ष आना है।
कल फिर मैं और मेरी माँ ने
लकड़ियाँ बीनने जाना है।
फिर तुम्हारी भूखी नज़रों ने
मेरे जिस्म को खाना है।
रोटी के दो टुकड़ों लिए
हाथ फैलाना है।
भूख दु:ख लाचारी ने
उसी तरह सताना है।
वर्ष तो वही पुराना है,
कल फिर मैं और मेरी माँ ने
लकड़ियाँ बीनने जाना है।

- बलकार सिंह, पंजाब

बिगुल के लिए कविता

हम तो बस इसी बहाने निकले हैं
धरती की गोद में बैठकर आसमाँ को झुकाने निकले हैं
जुल्मतों के दौर से, इन्साँ को बचाने निकले हैं
विज्ञान की ज्वाला जलाकर, अँधेरा मिटाने निकले हैं
हम इंसान है, इंसानों को इंसान बनाने निकले हैं
हम अन्धविश्वास को दहलाने निकले हैं
हम ग़रीबों की भूख मिटाने निकले हैं
हम किसी धर्म-मजहब के नहीं
हम तो धर्म-जात की नफ़रतों को मिटाने निकले हैं
हम इंसानों को जगाने निकले हैं
हम तो लोगों को मिलाने निकले हैं
शहीदों के देश में, ये अहसास दिलाने निकले हैं
किस तरह बलिदानों से स्वतन्त्रता दिलायी
ये फिर बतलाने निकले हैं
भगतसिंह, शहीद सराभा को सुनाने निकले हैं
हम इंसानों को जगाने निकले हैं
हम इंसान हैं, इंसानों को इंसान बनाने निकले हैं
हम जवानों को जवानी का मतलब समझाने निकले हैं
नशे की महामारी से बचाने निकले हैं
हम विज्ञान की ज्वाला से पाखण्ड को मिटाने निकले हैं
हम इंसानों को जगाने निकले हैं
हम इंसान हैं, इंसानों को इंसान बनाने निकले हैं
क्यूँ मुज़फ़्फ़रनगर जला, क्यूँ गुजरात सुलगा
क्यूँ बच्चे मारे पेट में, क्यूँ नारी का अपमान हुआ
हम वो राज बताने निकले हैं
हम लोगों की आँखों से अँधकार मिटाने निकले हैं
अब अगर तू ना समझा जेवी,
आगे क्या अंजाम होगा मेरे देश का
हम वो अनुमान लगाने निकले हैं
हम इंसानों को जगाने निकले हैं
हम इंसान हैं, इंसानों को इंसान बनाने निकले हैं

जगविन्द्र सिंह, बलराज नगर, कैथल

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" **- लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:
डाक से भेजने का पता: **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**
ईमेल से भेजने का पता: **bigulakhbar@gmail.com**

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमश: उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं:
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता:
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul
खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता: वार्षिक: 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन: 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फ़ोन: 0522-2786782, 8853093555, 9936650658
ईमेल: bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति - रु. 5/- वार्षिक - रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - रु. 2000/-

नीमराना के ऑटो सेक्टर के मज़दूरों की लड़ाई जारी है...

राजस्थान के नीमराना में, जापानी पूँजीपतियों के लिए जापानी ज़ोन बनाया गया है। यहाँ पर अगर मज़दूरों को छींक भी आ जाये तो राज्य सीधे मज़दूरों को 'टैकल' करता है। यानी कि यहाँ पर मज़दूरों का ज़बरदस्त शोषण है। यहाँ मज़दूरों को दुनिया की नामी-गिरामी कम्पनियों में महज़ 4000-5000 रुपये पर खटाया जाता है। डाइकिन एसी बनाने वाली एक बड़ी कम्पनी है। शोषण का चक्का यहाँ पर काम करनेवाले मज़दूरों के ऊपर भी उसी रफ़्तार से चलता है। इसके ख़िलाफ़ यहाँ पर काम करने वाले साथियों ने परमानेन्ट-कॉन्ट्रैक्ट की दीवार गिराकर संघर्ष का बिगुल फूँका। स्थायी मज़दूरों के साथ 400 ठेका मज़दूरों ने सितम्बर 2013 में यूनियन बनाने की माँग और ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से साथियों की लगातार छँटनी के विरुद्ध हड़ताल पर बैठ गये। यह हड़ताल दो महीने तक चली। सेक्टर के दूसरे कारख़ाने के साथी भी डाइकिन के साथियों की इस हड़ताल के समर्थन में थे। हड़ताल पर जाने से पहले कारख़ाने से तक़रीबन 120 स्थायी और 400 ठेका मज़दूरों को ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से निकाला गया था। संघर्ष के दबाव में प्रबन्धन 39 साथियों को छोड़कर सभी को वापिस लेने पर राज़ी हो गया था, उन्हें 80 दिन की जाँच के बाद लेने की बात की गयी थी। इसके बाद प्रबन्धन ने लिखित त्रिपक्षीय समझौते का उल्लंघन करते हुए 19 स्थायी और 400 ठेका मज़दूरों को काम पर वापस लेने से मना कर दिया। इसके बाद भी समय-समय पर लोगों का निकाला जाना जारी रहा। 18 स्थाई मज़दूर और 100 ठेका मज़दूरों को बाद में फिर बाहर कर दिया गया। मज़दूरों को ग़ैरक़ानूनी तरीक़े से निकालने का काम आज भी जारी है। इसके साथ ही मज़दूरों की यूनियन बनाने की प्रक्रिया में शामिल कुछ मज़दूरों पर प्रबन्धन के द्वारा दबाव बनाने के कारण मुकरने से यूनियन पंजीकरण की कार्रवाई में बाधा उत्पन्न की गयी। मज़दूरों के यूनियन न बनने देने के लिए प्रबन्धन हर किस्म की तिकड़म अपनाने से बाज़ नहीं आता है। राजस्थान श्रम विभाग के अधिकारियों ने स्पष्ट कहा कि उन्हें ऊपर से ऑर्डर है कि यूनियन पंजीकरण न किया जाये।

डाइकिन के मज़दूरों के इस संघर्ष का नेतृत्व केन्द्रीय ट्रेड यूनियन एटक कर रही है। 16 दिसम्बर को दैकिन के मज़दूरों ने अन्य मज़दूरों के साथ मिलकर जयपुर स्थित श्रम विभाग पर एक दिन का टोकन धरना दिया। इस टोकन धरने के बाद डाईकिन के निकाले गये साथियों ने वहीं श्रम विभाग पर अनिश्चितकालीन धरने पर बैठने का फ़ैसला किया। उनकी माँग है कि डाईकिन एयरकंडीशनिंग में हुए त्रिपक्षीय समझौते को तुरन्त लागू किया जाये, ठेका प्रथा बन्द की जाये, बरख़ास्त मज़दूरों को काम पर वापस लिया जाये, मज़दूर विरोधी क़ानून वापिस लिया जाये, बेरोज़गारी भत्ता लागू किया जाये। डाईकिन मज़दूरों के इस संघर्ष के समर्थन में होण्डा मोटरसाइकिल यूनियन, तप्पुकारा, श्री सीमेण्ट मज़दूर यूनियन, पाली सीतारामपुर लघु उद्योग मज़दूर यूनियन, जयपुर और मिको बोस्च यूनियन, सीतापुर खड़ी हैं।

आपको यह जानकर हैरत होगी कि मज़दूरों के धरने पर बैठने के फ़ैसले पर सबसे ज़्यादा आपत्ति श्रम विभाग या कम्पनी प्रबन्धन को नहीं बल्कि एटक को है। श्रम विभाग में अधिकारियों से हर रोज़ घण्टों बैठक करके एटक का नेतृत्व धरने पर बैठे मज़दूरों के पास यह निष्कर्ष लेकर पहुँचता है कि यहाँ पर धरने पर बैठने से कुछ नहीं होगा घर जाओ, हम हैं यहाँ। धरने पर बैठे मज़दूर कई बार श्रम विभाग के अधिकारियों और एटक के बीच अन्तर नहीं कर पाते हैं। अदालती कार्रवाई में भी एटक की सहायता 'राम भरोसे हिन्दू होटल' टाइप है। इसके पहले श्री राम पिस्टन्स एण्ड रिंग्स, भिवाड़ी का भी संघर्ष एटक के ही नेतृत्व में चल रहा था, इस संघर्ष में भी जुझारू मज़दूर लम्बे समय तक संघर्ष करते रहे थे किन्तु नेतृत्व ने इस संघर्ष को भी गड्ढे में धकेल दिया था। आज अगर एटक चाहती तो ऐसे तमाम आन्दोलनों को एक सूत्र में पिरोकर उनमें एक नयी उर्जा फूँक सकती थी। एटक के टँगे एक बैनर में श्रीराम पिस्टन्स एण्ड रिंग्स और डाईकिन एयरकंडिशनिंग कामगार यूनियन का अन्य यूनियनों के नामों के साथ ज़िक्र था किन्तु असल में उनका आपसी कोई मंच नहीं है। यहाँ तक की एटक के बैनर तले संघर्ष करने वाले मज़दूरों का आपस में परिचय भी नहीं था। राजस्थान हो या हरियाणा हो या चाहे केरल हो, एटक हो या सीटू हो या इण्टक हो केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों का चरित्र आज जग ज़ाहिर है। राजस्थान सरकार भी मज़दूरों के ऊपर दमन करने में किसी भी सरकार से पीछे नहीं है।

आज संघर्ष के जिस मुकाम पर मज़दूर श्रम विभाग पर बैठे हैं वहाँ 'आगे का रास्ता क्या हो?' यह सवाल उनके बीच तैर रहा है। दिल्ली से जयपुर तक जाने वाली सड़क एनएच-2 के दोनों तरफ़ फैली औद्योगिक पट्टी भारतीय पूँजीवाद की स्वर्ण रेखा है। हरियाणा में गुडगाँव-मानेसर-धारुहेड़ा-बावल से होते हुए राजस्थान के भिवाड़ी-खुशखेडा-नीमराना तक कारख़ानों का हुजूम है। यहाँ हर एक कारख़ाने में मज़दूरों की हड्डी का चुरा बनाकर मुनाफ़ा कूटा जाता है। जहाँ शोषण होता है, वहीं प्रतिरोध भी। पिछले दस साल में अलग-अलग कारख़ानों में मज़दूरों के संघर्ष की झलक मिलती है। 2005 में होण्डा (मानेसर) के मज़दूरों का संघर्ष, 2009 में रिको-सनबीम के मज़दूरों का संघर्ष, जिसमें एक मज़दूर अजित यादव की मौत के बाद पूरे इलाक़े के लाखों मज़दूर सड़क पर उतर आये थे, 2012 में मारुती के मज़दूरों का संघर्ष, राजस्थान में श्री राम पिस्टन्स, डाईकिन के मज़दूरों का संघर्ष इसके अलावा अस्ति, मुंजाल, मेट्रो आदि कुछ उदहारण हैं। बिगुल के पिछले अंक में भी आप लोगों ने ब्रिजस्टोन के मज़दूरों के संघर्ष के बारे में पढ़ा होगा। लेकिन इन संघर्षों में मालिक-प्रबन्धन का पलड़ा भारी रहा है।

आज की ज़रूरत है कि इन बीते हुए संघर्षों से ज़रूरी सबक़ निकले जायें, फिर आगे की रणनीति बनायी जाये। हर कारख़ाने के संघर्ष पर नज़र डालें तो यह बात सामने आती है कि संघर्षों का चरित्र एक-सा है। तकरीबन हर जगह एक-से ही मुद्दे हैं। ये यूनियन बनाने के अधिकार से लेकर ग़ैर-क़ानूनी छँटनी, ठेकेदारी प्रथा, वर्कलोड, अमानवीय कार्य-परिस्थितियाँ, जबरन ओवरटाइम आदि-आदि हैं। इन तमाम संघर्षों में मज़दूरों की स्वतन्त्र पहलक़दमी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन के झाँसे में आकर फँस जाती है। संघर्ष की शुरुआत मज़दूर अपने मालिक-प्रबन्धन के ख़िलाफ़ करते हैं, फिर उन्हें पता चलता है कि उनका सामना श्रम विभाग, पुलिस-प्रसाशन, अदालत से लेकर नेता-मन्त्री, गुण्डे-बाउंसर, मीडिया तक से है। नुक्तेवार अगर उनके निचोड़ निकाले जायें तो आज सरकार से लेकर ग़द्दार दलाल ट्रेड यूनियन का पक्ष साफ़ है। वे नंगे तौर पर मालिकों के पक्ष में खड़े हैं। साथ ही आज काम का जिस प्रकार बँटवारा किया गया है, आज काम को पूरे सेक्टर में बिखरा दिया गया है, इसी के साथ मज़दूरों को भी बिखरा दिया गया है। आज एक मालिक या मालिकों के समूह के कई-कई कारख़ाने हैं, अगर कहीं पर मज़दूर हड़ताल करते भी हैं तो वो दूसरी जगह उत्पादन बढ़ाकर अपने नुक़सान की पूर्ति कर लेता है। अव्वलन आज एक कारख़ाने में शत-प्रतिशत उत्पादन रुकता भी नहीं है, अगर कहीं मज़दूर हड़ताल पर बैठे भी होते हैं तो पूरे सेक्टर में फैली 'रिजर्व आर्मी' अगले ही दिन से काम पर लग जाती है। ठेकेदारी प्रथा के जुए के नीचे मज़दूरों को एक-दूसरे से तोड़कर रखा जा रहा है। यानी कि आज एक कारख़ाने की चौहद्दी में संघर्ष जीत पाना मुमकिन नहीं है। आज परिस्थितियों का तकाज़ा है कि सेक्टरगत एकता क़ायम की जाये। एक स्वतन्त्र क्रान्तिकारी संगठन से जुड़ने की ज़रूरत है जिसका किसी भी चुनावबाज़ पार्टी से कोई सम्बन्ध न हो, जो अलग-अलग कारख़ानों के संघर्ष को एक कड़ी में पिरोये।

– बिगुल संवाददाता

गुड़गाँव के एक मज़दूर की चिट्ठी

सोफ़ा सेट कौन बनाये - मज़दूर
बँगला, कोठी, अटारी कौन बनाये - मज़दूर
ऊँची-ऊँची इमारतें कौन खड़ी करे - मज़दूर
बीएम डब्ल्यू, मर्सिडीस तथा सभी वाहन कौन बनाये - मज़दूर
ज़मीन खुदाई कर खदानों से खनिज कौन निकाले - मज़दूर
आमिरज़ादों के लिए ऐयाशी के टापू कौन बनाये - मज़दूर
और इनकी क़ब्र कौन खोदे - मज़दूर

आज गुडगाँव में जो चमक-दमक दिखती है इसके पीछे मज़दूरों का ख़ून-पसीना लगा हुआ है। जिन अपार्टमेण्टों, शोपिंग मॉलों, बड़ी-बड़ी इमारतों से लेकर ऑटोमोबाइल सेक्टर को देखकर कहा जा सकता है कि यहाँ रहने वालों की ज़िन्दगी हर प्रकार से सुख-सम्पन्न होगी। लेकिन इस क्षेत्र के औधोगिक पट्टी तथा उन लॉजों को देखा जाये जिनमें मज़दूर रहते हैं और उनमें भी एक-एक कमरे में 3-4 मज़दूर रहने पर मजबूर हैं तो इस सारी चमक-दमक की असलियत सामने आ जाती है। मज़दूरों की एक आबादी फ़ैक्टरियों में काम करती है और दूसरी फ़ौज सड़क पर बेरोज़गार घूमती है। इससे कोई भी आसानी से मज़दूरों की हालत का अन्दाज़ा लगा सकता है। गुडगाँव-धारूहेड़ा-मानेसर-बावल से भिवाड़ी तक का औद्योगिक क्षेत्र देश की सबसे बड़ी ऑटोमोबाइल पट्टी है जहाँ 60% से ज़्यादा ऑटोमोबाइल उत्पाद का उत्पादन होता है।

अब थोडा-सा इस बात पर ध्यान देते हैं कि फ़ैक्टरी में काम की परिस्थितियाँ कितनी अमानवीय हैं। फ़ैक्टरी चाहे कोई भी हो, मारुति-सुजुकी, बजाज, होण्डा या उनकी वेण्डर कम्पनी हो या वेंडर की वेण्डर। हर जगह एक ही हाल है, काम पर जाने का समय तय होता है लेकिन आने का समय सुपरवाइज़र, मैनेजमेण्ट के हाथ में होता है। आये दिन किसी-न-किसी कम्पनी में मज़दूर दुर्घटना के शिकार होते रहते हैं। कहीं सुरक्षा का कोई इन्तज़ाम नहीं है। जो मज़दूर ऑटोमोबाइल सेक्टर में काम करते हैं, साँस लेते वक़्त उनके फेफड़ों में लोहे के बारीक़ कण और एक्सपोर्ट लाइन में काम करने वाले मज़दूरों के फेफड़ों में कपड़े के बारीक़ रेशे चले जाते हैं जिससे उन्हें बेहद गम्भीर बीमारियाँ हो जाती हैं। न ही मज़दूरों को कोई बोनस दिया जाता है। कम्पनी की ऊपरी चमक-दमक के पीछे की सच्चाई यह है कि मज़दूर आधुनिक गुलाम की ज़िन्दगी जीने को मजबूर है।

पूरे ऑटोमोबाइल सेक्टर में करीब 1000 इकाइयों में लगभग 10 लाख मज़दूर काम करते हैं, जिनमें 80% कैजुअल, ठेके पर काम करते हैं जो आमतौर पर 12-14 घण्टे काम करने के बाद 8-10 हज़ार रुपये प्रतिमाह पाते हैं। ये वेतन परमानेण्ट मज़दूरों से बहुत कम है। मज़दूरों को उनके काम का नगण्य हिस्सा वेतन के रूप में दिया जाता है। क्योंकि मौजूदा तकनीक के हिसाब से 8 घण्टे के कार्य दिवस में से एक मज़दूर औसतन सिर्फ़ 1 घण्टा 12 मिनट के काम का वेतन पाता है, बाक़ी 6 घण्टे 48 मिनट वो मालिक के मुनाफ़े के लिए काम करता है।

काम की परिस्थिति की जटिलता का अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि 46-52 सेकण्ड में 13 अलग-अलग प्रक्रियाएँ पूरी करनी होती हैं। एक कारखाने में 30 अलग मॉडल की कारों की सीट लगनी होती है, सीट लगाने के लिए एक मज़दूर को कम्पनी द्वारा 36 सेकण्ड का समय तय किया गया था किन्तु श्रमिकों के दबाब के कारण 50 सेकण्ड कर दिया गया। औसतन मज़दूर 8.30 घण्टे की शिफ़्ट में 530 कारों में सीट लगाता है, मतलब मज़दूरों को लगातार मशीन की तरह काम करना होता है। वही स्थाई मज़दूरों के बराबर काम करने वाले ठेका व कैजुअल पर छँटनी की तलवार लटकती रहती है।

इस शोषण के ख़िलाफ़ जब भी मज़दूर आवाज़ उठाता है तो उनको गुण्डों, बाउंसरों और पुलिस की मार झेलनी पड़ती है। मज़दूर ये समझने लगे हैं कि श्रम विभाग से लेकर अदालत तक, पुलिस से लेकर संसद तक उनके दुश्मन हैं और पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमिटी की तरह काम करते हैं। फ़ैक्टरियों के बाहर भी ज़िन्दगी नरक के बदतर ही है। अधिकतर मज़दूर प्रवासी हैं, और औद्योगिक क्षेत्र के आस-पास के गाँव और कॉलोनियों में रहते हैं जहाँ मकान मालिक की दुकान से ही राशन ख़रीदना पड़ता है। मतलब एक जेल से निकलकर दूसरी जेल में जाते हैं जहाँ मनोरंजन का कोई साधन नहीं है, कोई पार्क नहीं, कोई स्वास्थ्य सुविधाएँ नहीं हैं।

आज केवल गुडगाँव में ही नहीं बल्कि पूरे देश में मज़दूर आन्दोलन को कुचलने और पूँजीपतियों के हितों की रखवाली करने के लिए सभी चुनावी पार्टियाँ आपस में प्रतिस्पर्धा कर रही हैं। कांग्रेस, भाजपा, सीपीआई, सीपीआईएम तथा तमाम चुनावी पार्टियाँ पूँजीपतियों की चाकरी करती हैं। मोदी सरकार ने तो पूँजीपतियों के अच्छे दिन व मज़दूरों के लिए बुरे दिन की शुरुआत कर दी है।

साथियो, इन सभी बातों से स्पष्ट है कि सरकार चाहे किसी की भी हो सभी की नीतियाँ एक हैं, सभी सरकारें मज़दूर विरोधी नीतियाँ बनाकर हमारा ही शोषण करती हैं। हम सभी की समस्याएँ एक हैं, इसलिए हमें व्यापक एकता बनानी होगी। पूरे इलाक़े और सेक्टरगत क्रान्तिकारी यूनियनें बनानी होंगी और इंक़लाब का परचम लहराना होगा।

– सचिन, गुड़गाँव

हरियाणा पुलिस का दलित विरोधी चेहरा एक बार फिर बेनकाब

हरियाणा में दलित उत्पीड़न के बर्बर मामले लगातार ही सामने आते रहते हैं। ज़्यादातर मामलों में दोषियों पर कोई आँच नहीं आती और कई बार तो दलित उत्पीड़न करने वाले स्वयं राज्य मशीनरी और पुलित प्रशासन होते हैं।

गत 24 दिसम्बर सुबह 4 बजे, पुलिस प्रताड़ना से परेशान होकर एक निर्दोष युवक आत्महत्या का शिकार हो गया। हरियाणा के ज़िला कैथल के गाँव भाणा के ऋषिपाल को पुलिस द्वारा ग़ैरक़ानूनी तरीक़े से उठा लिया गया था, एक लड़के व लड़की के प्रेम के चलते घर से "भागने" के मामले को लेकर उसे बेवजह शारीरिक और मानसिक तौर पर परेशान किया गया, उसे धमकियाँ दी गयीं, जातिसूचक गालियाँ दी गयीं और कहा गया कि तुम्हें सीआईए स्टाफ़ को सौंप दिया जायेगा! (सीआईए स्टाफ़ हरियाणा पुलिस का ही अंग है जो "अपराधियों" पर कठोर कार्रवाई करने के लिए कुख्यात है।) लेकिन ऋषिपाल का उक्त मामले से कोई भी सम्बन्ध नहीं था। ऋषिपाल पास के शहर पूण्डरी में मेहनत-मज़दूरी का काम करता था। युवक को छोड़ने की एवज में पुलिस वालों ने उसके घर वालों से 15,000 रुपयों की माँग की। हालाँकि गाँव वालों के दबाव में आकर युवक को थाने से छोड़ दिया गया था लेकिन उत्पीड़न का क्रम यहीं पर नहीं रुका, रात को पुनः पुलिस वाले घर आकर फ़िर से युवक को धमकाकर गये। बेवजह परेशान किये जाने और शारीरिक व मानसिक प्रताड़ना के शिकार ऋषिपाल ने सुबह 4 बजे आत्महत्या करके अपनी ज़िन्दगी ख़त्म कर ली। यह घटना बेहद निन्दनीय है और हरियाणा पुलिस के दलित और ग़रीब विरोधी चेहरे को एक बार फिर से बेनकाब करती है।

दलित और ग़रीब विरोधी यह पहली घटना नहीं है। अभी पुगथला, ज़िला सोनीपत, गोहाना और सुनपेड़ काण्ड को हुए ज़्यादा समय नहीं हुआ है। विदित हो कि इन मामलों में भी पुलिस-प्रशासन की कार्यशैली पर गम्भीर सवाल उठे थे तथा आरोप लगे थे। दलित उत्पीड़न की यदि बात की जाये तो भगाणा, डांगावास, खैरलांजी, जवखेड़, गोहाना, दुलीना, मिर्चपुर, दानकौर आदि जगहों पर भयंकर दलित विरोधी घटनाओं को अंजाम दिया गया। उत्तर भारत के तीन राज्य पंजाब, हरियाणा और राजस्थान दलित उत्पीड़न की घटनाओं के लिए खासे कुख्यात हैं। दलित उत्पीड़न के मामले एक तरफ़ तो शासन-प्रशासन व सरकारों की भूमिका पर सवाल खड़ा करते हैं, वहीं दूसरी और हमारे समाज में दलित और ग़रीब विरोधी मानसिकता भी इनसे प्रदर्शित होती है। पुलिस विभाग के लोग भी बड़ी संख्या में बुरी तरह से दलित और ग़रीब विरोधी पूर्वाग्रहों का शिकार होते हैं। दलित-ग़रीब और समाज के कमज़ोर तबके प्रताड़ित करने वालों का आसान शिकार बन जाते हैं। भयंकर हत्याकाण्डों को अंजाम देकर बड़ी ही आसानी से दबा दिया जाता है। समाज की ग़रीब-दलित आबादी उत्पीड़न को अपनी नियति मान लेती है और उत्पीड़कों के ख़िलाफ़ उसके गुस्से को कोई दिशा नहीं मिल पाती।

ऋषिपाल की आत्महत्या के मामले को दबाने के भी पूरे प्रयास शासन-प्रशासन के द्वारा किये गये थे। उन्होंने आत्महत्या के लिए नयी ही कहानी गढ़ी कि ऋषिपाल किन्हीं कारणों से मानसिक रूप से परेशान था और उसकी आत्महत्या में पुलित की कोई भूमिका नहीं है आदि-आदि। **अखिल भारतीय जाति विरोधी मंच** ने उक्त मामले को तुरन्त संज्ञान में लिया और नौजवान भारत सभा के सहयोग से पुलिस व शासन-प्रशासन के रवैये का सख्त विरोध किया। लोगों को संगठित करके विरोध प्रदर्शन का आयोजन किया तथा अस्पताल का भी घेराव किया, पुलिस की करतूत लोगों के सामने लाने के लिए व्यापक परचा भी बाँटा गया। लोगों से न्याय के संघर्ष में साथ आने की अपील की गयी और कहा गया कि ज़्यादती किसी के साथ भी हो सकती है हमारा एक-दूसरे का साथ ही तमाम तरह के उत्पीड़न का मुकाबला कर सकता है और लोग साथ में आये भी। इसके बाद प्रशासन की नींद टूटी और तुरन्त प्रभाव से थाना प्रभारी को निलम्बित कर दिया गया और अन्य दोषियों के ख़िलाफ़ भी नामजद मामला दर्ज किया गया। अनुसूचित जाति आयोग ने भी मामले को अपने संज्ञान में लिया और ईश्वर सिंह ने गाँव में अपनी हाज़िरी लगायी तथा दोषियों को सज़ा देने और ऋषिपाल के परिजनों को मुआवज़ा देने का आश्वासन दिया।

अखिल भारतीय जाति विरोधी मंच के अजय ने बताया कि दलित उत्पीड़न के मामलों का समाज के सभी जातियों के इंसाफ़पसन्द लोगों को एकजुट होकर संगठित विरोध करना चाहिए। अन्य जातियों की ग़रीब आबादी को यह बात समझनी होगी की ग़रीब मेहनतकश दलितों, ग़रीब किसानों, खेतिहर मज़दूरों और समाज के तमाम ग़रीब तबके की एकजुटता और उसके अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के बूते ही हम दलित विरोधी उत्पीड़न का मुकाबला कर सकते हैं। उन्होंने कहा - सवर्ण और मँझोली जातियों की ग़रीब-मेहनतकश आबादी को इस बात को समझना होगा कि यदि हम समाज के एक तबके को दबाकर रखेंगे, उसका उत्पीड़न करेंगे तो हम खुद भी व्यवस्था द्वारा दबाये जाने और उत्पीड़न के विरुद्ध अकेले लड़ नहीं पायेंगे। और दलित जातियों की ग़रीब-मेहनतकश आबादी को भी यह बात समझनी होगी कि तमाम तरह की पहचान की राजनीति, दलितवादी राजनीति से हम दलित उत्पीड़न का मुकाबला नहीं कर सकते। दलितों का वोट की राजनीति में एक मोहरे के सामान इस्तेमाल करने वाले लोग केवल रस्मी तौर पर ही मुद्दों को उछालते हैं और उन मुद्दों का वोट बैंक की राजनीति के लिए इस्तेमाल करते हैं। इनके लिए कार्टून महत्वपूर्ण मुद्दा बन जाता है किन्तु दलित उत्पीड़न के भयंकर मामलों के समय ये बस बयान देकर अपने-अपने बिलों में दुबक जाते हैं। कुर्सी मिलने के बाद तो दलितों के इन तारणहारों की ज़बान को लकवा ही मार जाता है। मायावती, गीता भुक्कल, शैलजा कुमारी, रामदास आठवले, थिरुमावलवन, रामविलास पासवान, जीतनराम माँझी और उदितराज इसके कुछ ही उदाहरण हैं। उन्होंने कहा कि अपनी एकजुटता के बल पर ही हम सत्ता-व्यवस्था के दमन-उत्पीड़न का मुकाबला कर सकते हैं। साथ ही हमें ग़ैर-दलित जातियों के मेहनतकशों-मज़दूरों व ग़रीब आबादी में मौजूद जातिगत भेदभावों व पूर्वाग्रहों के विरुद्ध संघर्ष भी चलाना होगा। दलित और ग़रीब उत्पीड़न की तमाम घटनाओं के ख़िलाफ़ हर इंसाफ़पसन्द इंसान को अपनी आवाज़ उठानी चाहिए, भले ही वह किसी भी जाति या धर्म से क्यों न जुड़ा हो।

- बिगुल संवाददाता

पंजाब की जनता का काला क़ानून विरोधी संघर्ष जारी

पंजाब की अकाली-भाजपा सरकार के काले क़ानून 'पंजाब (सार्वजनिक व निजी सम्पत्ति नुक़सान रोकथाम) क़ानून' को रद्द करवाने के लिए पंजाब के विभिन्न जनसंगठनों ने 'काला क़ानून विरोधी संयुक्त मोर्चा, पंजाब' के बैनर तले संघर्ष को आगे बढ़ाते हुए 23 दिसम्बर 2015 को देश भगत यादगार हॉल, जलन्धर में पंजाब स्तरीय कन्वेंशन आयोजित की। जनसंगठनों के पंजाब भर से आये नेताओं, कार्यकर्ताओं व सदस्यों ने एक आवाज़ में जनसंघर्षों को कुचलने की पंजाब सरकार की फ़ासीवादी नीति के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द की और संकल्प लिया कि हुक़्मरानों के इस जनविरोधी हमले के ख़िलाफ़ आन्दोलन खड़ा किया जायेगा। इस सम्मेलन में करीब साढ़े तीन हज़ार लोग शामिल हुए। इससे पहले संयुक्त मोर्चे के बैनर तले 10 दिसम्बर 2015 को अन्तर्राष्ट्रीय जनवादी अधिकार दिवस के अवसर पर सारे पंजाब में तहसील स्तरों पर राज्य सरकार के ख़िलाफ़ अर्थी फूँक प्रदर्शन किये गये। इन सभी अवसरों पर बिगुल मज़दूर दस्ता ने बढ़चढ़कर हिस्सेदारी की। आगामी 29 जनवरी को पंजाब के सभी ज़िला केन्द्रों पर ज़ोरदार प्रदर्शन होंगे।

ग़ौरतलब है कि पंजाब की अकाली-भाजपा सरकार ने जुलाई 2014 में उपरोक्त क़ानून पारित किया था जिसे पिछले दिनों राष्ट्रपति (यानी केन्द्र सरकार) से मंजूरी मिल गयी है। इस क़ानून के मुताबिक़ किसी भी प्रकार के आन्दोलन, धरना, प्रदर्शन, रैली, हड़ताल, जुलूस, आदि के दौरान अगर सार्वजनिक व निजी सम्पत्ति को किसी भी प्रकार का नुक़सान होता है (इसमें घाटा में शामिल किया गया है, यानी हड़ताल-टूल डाऊन आदि करने पर भी जेल जाना होगा) तो संघर्ष में किसी भी प्रकार से शामिल, मार्गदर्शन करने वालों, सलाह देने वालों, किसी भी प्रकार की मदद करने वालों आदि

को दोषी माना जायेगा। हवलदार तुरन्त गिरफ़्तारी कर सकता है। इस क़ानून के तहत किया गया 'अपराध' ग़ैरजमानती है। नुक़सान भरपाई के लिए ज़मीन जब्त की जायेगी। जुर्माने अलग से लगेंगे। एक से पाँच वर्ष तक की क़ैद की सज़ा होगी। वीडियो को पक्के सबूत के तौर पर माना जायेगा। कहने की ज़रूरत नहीं कि इस क़ानून का इस्तेमाल हक़, सच, इंसाफ़ के लिए संघर्ष करने वालों के ख़िलाफ़ ही होगा। हुक़्मरानों की घोर जनविरोधी नीतियों के चलते जनता में बढ़ते आक्रोश के माहौल में पहले से मौजूद दमनकारी काले क़ानूनों और राजकीय ढाँचे से अब इनका काम नहीं चलने वाला। जनआवाज़ को दबाने के लिए जुल्मी हुक़्मरानों को दमनतन्त्र के दाँत तीखे करने की ज़रूरत पड़ रही है। इसी का नतीजा है पंजाब का यह नया काला क़ानून। लेकिन जनता हुक़्मरानों के काले क़ानूनों से डरकर चुप नहीं बैठती। पंजाब की जनता का संघर्ष इसका गवाह है।

- बिगुल संवाददाता

ढण्डारी अपहरण, बलात्कार व क़त्ल काण्ड की पीड़िता शहनाज़ की पहली बरसी पर श्रद्धांजलि समागम

लुधियाना में ढण्डारी अपहरण, बलात्कार व क़त्ल काण्ड की पीड़िता शहनाज़ की पहली बरसी मनाने के लिए ढण्डारी बलात्कार व क़त्ल काण्ड विरोधी संघर्ष कमेटी के आह्वान पर ढण्डारी, लुधियाना में गुज़री 20 दिसम्बर को श्रद्धांजलि समागम आयोजित किया गया। एकत्रित लोगों द्वारा शहनाज़ को इंसाफ़ दिलाने के लिए संघर्ष जारी रखने का ऐलान किया गया। संघर्ष कमेटी ने ऐलान किया कि राजनीतिक-पुलिस-प्रशासनिक सरपरस्ती प्राप्त गुण्डागर्दी को जड़ से मिटाने के लिए जनान्दोलन खड़ा करने की कोशिशें जारी रहेंगी। कारख़ाना मज़दूर यूनियन, पंजाब; टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, पंजाब; पंजाब स्टूडेंटस यूनियन (ललकार); नौजवान भारत सभा व बिगुल मज़दूर दस्ता द्वारा पीड़ितों को इंसाफ़ दिलाने के लिए गठित की गयी 'संघर्ष कमेटी' के विभिन्न वक्ताओं ने कहा कि शहनाज़ दमन-उत्पीडन का शिकार सभी स्त्रियों और साधारण जनता के सामने संघर्ष का एक प्रतीक है। बलात्कार, अपहरण, छेड़छाड़ जैसे जुल्मों का शिकार अधिकतर स्त्रियाँ व उनके परिवार इन घटनाओं को सामाजिक बदनामी, मारपीट, जान गँवाने, न्याय की नाउम्मीदी आदि कारणों के चलते छिपा जाते हैं। लेकिन बहादुर शहनाज़ और उसके परिवार ने ऐसा नहीं किया। शहनाज़ ने लड़ाई लड़ी और वह लड़ते-लड़ते मौत को गले लगा गयी। वह जुल्म के सामने घुटने न टेकने की मिसाल क़ायम करके गयी है।

शहनाज़ को 4 दिसम्बर को एक गुण्डा गिरोह ने मिट्टी का तेल डालकर आग लगाकर जला दिया था। इससे पहले शहनाज़ को 25 अक्टूबर को अगवा करके दो दिन तक सामूहिक बलात्कार किया गया। राजनीतिक सरपरस्ती में पलने वाले इस गुण्डा गिरोह के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने में पुलिस ने बेहद ढिलाई बरती, पीड़ितों की ढंग से सुनवाई नहीं की गयी, रिपोर्ट लिखने और मेडिकल करवाने में देरी की गयी। बलात्कार व अगवा करने के दोषी 18 दिन बाद जमानत करवाने में कामयाब हो गये। गुण्डा गिरोह ने शहनाज़ और उसके परिवार को केस वापिस लेने के लिए डराया, जान से मारने की धमकियाँ दीं। 4 दिसम्बर को दिन-दिहाड़े सात गुण्डों ने उसे मिट्टी का तेल डालकर जला दिया। 9 दिसम्बर को उसकी मौत हो गयी। गुण्डा गिरोह के इस अपराध व गुण्डा-सियासी-पुलिस-प्रशासनिक नापाक गठजोड़ के ख़िलाफ़ हज़ारों लोगों द्वारा 'संघर्ष कमेटी' के नेतृत्व में विशाल जुझारू संघर्ष लड़ा गया था। जनदबाव के चलते दोषियों को सज़ा की उम्मीद बँधी हुई है। क़त्ल काण्ड के सात दोषी जेल में बन्द हैं। अदालत में केस चल रहा है। पुलिस द्वारा एफ़आईआर दर्ज करने में की गयी गड़बड़ियों के चलते अगवा व बलात्कार का एक दोषी जमानत पर आज़ाद घूम रहा है। इसके ख़िलाफ़ हाईकोर्ट में अपील की गयी है और उसे भी जेल पहुँचाने की पुरज़ोर कोशिश की जा रही है।

श्रद्धांजलि समागम को 'संघर्ष कमेटी' की ओर से राजविन्दर, कुलविन्दर, बिन्नी और विश्वनाथ ने सम्बोधित किया। डेमोक्रेटिक लॉयर्स ऐसोसिएशन की ओर से एडवोकेट हरप्रीत जीरख और शहनाज़ के पिता मुहम्मद इलियास ने भी लोगों को सम्बोधित किया। क्रान्तिकारी सांस्कृतिक मंच 'दस्तक' ने गीत पेश किये। जनचेतना ने पुस्तक प्रदर्शनी भी लगायी।

तय जगह पर, आज्ञा लेकर व फ़ीस देकर विरोध करो वरना जेल जाओ!

उपरोक्त बात किसी को मज़ाक़ लग सकती है लेकिन यह बात पूरी तरह सच है। यह फ़ासीवादी फ़रमान पंजाब के ज़िला लुधियाना के प्रशासन ने जारी किया है। डी.सी. लुधियाना ने तय किया है कि धरने शहर के बाहरी हिस्से में सिर्फ़ चण्डीगढ़ रोड पर स्थित गलाडा मैदान (जिसे पुडा मैदान भी कहते हैं) पर ही लगेंगे और वहाँ धरना लगाने के लिए भी पहले से आज्ञा लेनी होगी। इसकी फ़ीस 7500 रुपये होगी। इस फ़रमान की उल्लंघना करने पर पुलिस केस, क़ैद आदि सज़ाएँ देने का ऐलान किया गया है। लुधियाना प्रशासन का धरनों के लिए एक जगह तय करने का फ़रमान घोर जनविरोधी और ग़ैरजनवादी ही नहीं बल्कि असंवैधानिक भी है। यह संविधान की धारा 19 की स्पष्ट उल्लंघना है जिसके तहत लोगों को अपने विचारों के प्रचार-प्रसार, संगठित होने व संघर्ष करने की आज़ादी है।

इस सम्बन्ध में डी.सी. ने लुधियाना के पुलिस कमिश्नर को इस आदेश को लागू करने के लिए पत्र भेज दिया है। उधर इस फ़रमान को रद्द करवाने के लिए जनवादी-इंसाफ़पसन्द जनसंगठनों ने भी कमर कस ली है। लुधियाना प्रशासन को माँगपत्र सौंपकर इस फ़ैसले को पूरी तरह रद्द करने की माँग की गयी है।

जनसंगठनों का कहना है कि पंजाब सरकार लोगों की आवाज़ कुचलने के लिए तरह-तरह के घटिया तरीक़े अपना रही है। पंजाब सरकार को जनता के आक्रोश से निपटने के लिए पहले से मौजूद काले क़ानून व दमनकारी ढाँचा नाकाफ़ी लग रहा है, इसलिए विभिन्न शहरों में धरना-प्रदर्शनों के लिए एक जगह तय करने और उल्लंघना करने पर जेलों में ठूँसने के फ़रमान जारी किये जा रहे हैं। लुधियाना में धरनों के लिए एक जगह तय करने का फ़रमान हालाँकि आम जनता के भलाई के नाम पर लाया जा रहा है लेकिन इसका मकसद लोगों के अधिकारों को कुचलना है। संगठनों ने कहा है कि धरना-प्रदर्शनों के लिए एक जगह तय करना एकदम फ़ासीवादी क़दम है। लोगों को अपनी समस्याओं के हल के लिए विभिन्न जगहों पर धरने-प्रदर्शन करने पड़ते हैं। इसके लिए एक जगह तय की ही नहीं जा सकती। लुधियाना प्रशासन का रवैया कितना जनविरोधी व ग़ैरजनवादी है, इसका धरना-प्रदर्शन के लिए आज्ञा लेने, फ़ीस तय करने व उल्लंघना करने पर सख़्त सज़ाओं से भी चलता है। पंजाब सरकार ने एक तरफ़ नुक़सान रोकने के नाम पर घोर जनविरोधी काला क़ानून पारित किया है, वहीं बची-खुची कसर विभिन्न शहरों में फ़ासीवादी फ़रमान जारी करके निकाली जा रही है। जनवादी जनसंगठनों ने कहा है कि वे लुधियाना प्रशासन के इस फ़ैसले की सख्त निन्दा करते हैं, इसे नामंजूर करते हैं और इसे तुरन्त वापिस लेने की माँग करते हैं। सार्वजनिक व निजी सम्पत्ति का नुक़सान रोकने के नाम पर पंजाब सरकार द्वारा लाये गये काले क़ानून को रद्द करवाने के लिए 29 जनवरी को पंजाब से सभी ज़िला केन्द्रों पर ज़ोरदार धरने-प्रदर्शन किये जायेंगे। जनसंगठनों के साझा मोर्चा ने ऐलान किया है कि ज़िला लुधियाना का प्रदर्शन डी.सी. कार्यालय पर ही होगा।

जनसंगठनों ने ऐलान किया है कि पंजाब की जनता दमनात्मक नियमों-क़ानूनों को कभी मंजूर नहीं करेगी और अपने संघर्षों को जारी रखेगी। अगर यह फ़ैसला रद्द नहीं किया जाता तो लुधियाना प्रशासन को तीखे जनसंघर्ष का सामना करना होगा।

- बिगुल संवाददाता

समाजवादी चीन और पूँजीवादी चीन की दो फैक्टरियों के बीच फर्क

(पेज 13 से आगे)

यह है कि पूँजीवादी देश में फैक्टरियों में निजी हस्तगतीकरण होता है और मज़दूरों के श्रम से पैदा हुआ बेशी मूल्य सीधे मालिक अपनी जेब में रखता है इसलिए इनकी उत्पादन व्यवस्था अधिकतम प्रोडक्शन पर जोर देती है और मज़दूर को मशीन के एक टूकड़े में बदल देती है। उसके बरक्स समाजवाद एक ऐसी व्यवस्था है जो मज़दूरों को उसके जीवन का असली आधार प्रदान करती है। हम आगे इस अंतर को और आगे विस्तारित करेंगे और सिर्फ फैक्टरी स्तर पर ही नहीं बल्कि मज़दूरों के रहने की जगह में, सुविधाओं के ढाँचे के बारे में विस्तार से बात करते हुए समाजवाद और पूँजीवाद के अंतर के बारे में गहनता से समझेंगे। लेकिन एक बात यहाँ जो समझ में आती है कि फैक्टरी फ्लोर के स्तर पर समाजवादी चीन और पूँजीवाद चीन में ज़मीन आसमान का अंतर है। यह हमें समझना होगा कि हमें क्या चाहिए? फोक्स्कोन की फैक्टरी के हालात आज भारत की भी लगभग हर फैक्टरी के हालात हैं। यहाँ भी मैनेजमेंट और मज़दूर के बीच मालिक और गुलाम का सम्बन्ध है न कि किसी समूह के दो सदस्यों सरीखा व्यवहार है। हमें अपनी फैक्टरी के हालातों को बदलना है तो इस मैनेजमेंट को बनाने वाली मुनाफ़ा आधारित व्यवस्था को ही ख़त्म करना होगा।

– सनी

उत्तर प्रदेश में चुनाव करीब आते ही
राम मन्दिर के बहाने साम्प्रदायिक तनाव पैदा करने की साज़िशें फिर तेज़

बाबरी मसजिद गिराये जाने के 23 वर्षों बाद विश्व हिन्दू परिषद व अन्य हिन्दुत्ववादी कट्टरपन्थी साम्प्रदायिक संगठनों ने इस बार फिर 6 दिसम्बर का दिन शौर्य दिवस के रूप में मनाया। वहीं मुस्लिम कट्टरपन्थी संगठनों ने इस मुद्दे को अपने संकीर्ण हितों के पक्ष में भुनाने के लिए जलसे-जुलूस निकाले। धर्म निरपेक्ष, जनवादी, क्रान्तिकारी संगठनों ने दोनों तरह की साम्प्रदायिक ताक़तों से अलग लोगों में आपसी सद्भावना क़ायम करने के लिए और साम्प्रदायिक ताक़तों के विरुद्ध लोगों को सचेत करने के लिए इस दिन को साम्प्रदायिकता विरोधी दिवस आदि रूपों में याद किया।

6 दिसम्बर 1992 को हिन्दुत्ववादी कट्टरपन्थियों ने आरएसएस व इसके अंग विश्व हिन्दू परिषद, भाजपा आदि संगठनों के नेतृत्व में बाबरी मसजिद गिरायी थी। यह दिन सचमुच ही भारतीय इतिहास का काला दिन था। हिन्दुत्ववादी कट्टरपन्थियों की यह काली करतूत जनता की एकजुटता व धर्मनिरपेक्षता पर एक बड़ा हमला थी। बाबरी मसजिद गिरा दी गयी थी लेकिन इसकी जगह राम मन्दिर बनाने का काम अभी नहीं हुआ है। अयोध्या में राम मन्दिर बनाने और अनेकों हिन्दुत्ववादी नारों के दम पर भाजपा बड़े स्तर पर वोट बँटोरने में कामयाब हुई है। अतीत में भाजपा ने अनेकों बार बाबरी मसजिद वाली जगह पर राम मन्दिर बनाने के वादे किये हैं। अब केन्द्र में भाजपा की बहुमत की सरकार है। हिन्दुत्ववादियों को अपना सपना अब साकार होता दिखायी पड़ रहा है। क़ानूनी ढंग से तो यह काम होता फ़िलहाल नज़र नहीं आ रहा लेकिन ग़ैरक़ानूनी ढंग से इसे अंजाम देने की साज़िशों में तेज़ी आ गयी है। पिछले दिनों अयोध्या में मन्दिर निर्माण के लिए ट्रक से पत्थर पहुँचाये गये। कहने की ज़रूरत नहीं है कि इस साज़िश के पीछे मोदी सरकार का पूरा हाथ है। राम मन्दिर बनता है या नहीं यह अलग बात है। लेकिन जो कुछ अयोध्या में चल रहा है उससे देश में साम्प्रदायिक तनाव बढ़ाने में भाजपा को पूरी मदद मिलेगी।

दूसरी तरफ़, उत्तर प्रदेश की अखिलेश सरकार को इस बहाने मुसलमानों में वोट बैंक मज़बूत करने में मदद मिलेगी। नज़दीक आ रहे विधानसभा चुनावों में मसजिद-मन्दिर के बहाने अपनी रोटियाँ सेंकने के लिए सभी वोट-बटोरू कमर कसे हुए हैं। हिन्दुत्ववादी कट्टरपन्थियों के साथ ही विभिन्न मुस्लिम कट्टरपन्थी लीडरों व संगठनों को भी एक बार फिर इस बहाने अपना गन्दा साम्प्रदायिक खेल खेलने का मौक़ा मिलेगा।

बेशक इस पूरे माहौल का सबसे अधिक फ़ायदा हिन्दुत्ववादी कट्टरपन्थियों को होना है। पहले ही देश में हिन्दुत्ववादी फ़ासीवाद का ख़तरा सामने खड़ा है। केन्द्र व विभिन्न राज्यों में सरकारें बनाने में कामयाब हुई फ़ासीवादी भाजपा लोगों के आर्थिक-राजनीतिक-जनवादी अधिकारों पर डाका तेज़ कर चुकी है। पूँजीवादी जनवादी की जगह फ़ासीवादी निज़ाम क़ायम करना इसका मकसद है। भारत के पूँजीवादी हाकिम जनता के अधिकारों पर डाके का सिलसिला अब पुराने ढंगों से, पूँजीवादी जनतन्त्र के ढोंग से, आगे बढ़ाने में अक्षम हैं। उन्हें भारत में अब फ़ासीवादी निज़ाम की ज़रूरत है। यह काम हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिकता के दम पर ही हो सकता है जिसकी अगुवाई आरएसएस कर रही है और भाजपा जिसका राजनीतिक (चुनावी) विंग है। राम मन्दिर निर्माण के मुद्दे के बहाने जिस तरह अतीत में भाजपा को काफ़ी फ़ायदा हुआ है, उसी तरह अब फिर साज़िशें रची जा रही हैं।

राम मन्दिर निर्माण के बहाने तनाव पैदा करने की साज़िशें देश की मेहनतकश जनता के लिए अतीत की तरह अब भी बेहद घातक सिद्ध होंगी। साम्प्रदायिक दूरियाँ पैदा करके जनता के आर्थिक-राजनीतिक जनवादी अधिकार बड़े स्तर पर छीने गये हैं। जितना बड़ा हमला जनता पर हुआ है उसके मुकाबले जनता के तरफ़ से प्रतिरोध कार्रवाई संगठित नहीं हो पायी है। अगर जनता ने साम्प्रदायिक ताक़तों की इन साज़िशों का जवाब पुख्ता ढंग से न दिया तो आने वाला समय जनता के हितों पर और बड़े हमले लेकर आयेगा। इसलिए क्रान्तिकारी, जनवादी, धर्मनिरपेक्ष ताक़तों को जनता को हिन्दुत्वी फ़ासीवादी ताक़तों के ख़िलाफ़ संगठित करने का काम बेहद गम्भीरता से करना चाहिए। हिन्दुत्ववादी फ़ासीवादियों की काली करतूतों का फ़ायदा उठाकर मुस्लिम कट्टरपन्थी साधारण मुस्लिम आबादी को अपने साम्प्रदायिक जाल में फँसाने की साज़िशें तेज़ कर रहे हैं। इनका भी डटकर विरोध करना होगा। साधारण मुस्लिम आबादी को समझाना होगा कि उनके धार्मिक जनवादी अधिकारों की रक्षा भी तब ही हो सकती है जब वे समूची मेहनतकश जनता का अंग बनकर धर्मनिरपेक्ष व जनवादी रुख से हिन्दुत्ववादी कट्टरपन्थियों समेत मुस्लिम कट्टरपन्थियों के विरोध में भी, यानी समूची साम्प्रदायिकता के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ेंगे। उन्हें समूची जनता के हिस्से के तौर पर भारत के पूँजीवादी हाकिमों द्वारा लोगों पर हो रहे आर्थिक-राजनीतिक हमलों का डटकर विरोध करना होगा। उन्हें मेहनतकश जनता की पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ वर्गीय लड़ाई को मज़बूत बनाना होगा।

– रणवीर

चेन्नई बाढ़ त्रासदी – प्राकृतिक क़हर नहीं, विकास के पूँजीवादी रास्ते का नतीजा

गुज़रे वर्ष का अन्त दक्षिण भारत ख़ासकर तमिलनाडू के चेन्नई (मद्रास) शहर के लोगों पर पड़ी बाढ़ की भारी मार के साथ कड़वी यादें छोड़ गया है। नवम्बर-दिसम्बर में बाढ़ के कारण 400 से अधिक लोग मारे गये और 18 लाख से अधिक विस्थापन का शिकार हुए हैं। इसके चलते एक लाख करोड़ रुपये के आर्थिक नुक़सान का अन्दाज़ा लगाया गया है। लौट रहे मानसून में, बंगाल की खाड़ी में बने कम दबाव के चलते भारी बरसात हुई। तमिलनाडू, आन्ध्र प्रदेश के कई शहरों व ज़िलों में और केन्द्र शासित पाडूचेरी में लोगों को बाढ़ की मार झेलनी पड़ी। चेन्नई शहर का अधिकतर हिस्सा पानी से भर गया। शहर के निचले हिस्सों में तो बेहद बुरी हालत थी। कुछ दिनों के लिए अस्पताल, स्कूल, परिवहन, बिजली, टेलीफ़ोन, आदि सब ठप्प हो गये।

अचानक भारी बरसात के कारण आयी बाढ़ को प्राकृतिक क़हर नहीं कहा जा सकता। यह बाढ़ उस विकास ढंग का नतीजा है जो हमारे देश में लागू किया जा रहा है।

भारत का पाँचवाँ सबसे बड़ा चेन्नई शहर जनसंख्या सघनता के मामले में चौथे स्थान पर है। इसे दुनिया का 36वाँ चौथा सबसे बड़ा शहरी क्षेत्र होने का दर्जा भी प्राप्त है। यह दक्षिण भारत का सबसे बड़ा औद्योगिक व व्यापारिक केन्द्र है। इसे दक्षिण भारत के अहम आर्थिक, सांस्कृतिक और शिक्षा के केन्द्र के तौर पर भी जाना जाता है। पर्यटन के तौर पर भी इसके भारत और संसार में अहम स्थान माना जाता है। लेकिन यह सारा विकास पूँजीवादी ग़ैरयोजनाबद्ध विकास है। प्रकृति से भयानक छेड़छाड़ की गयी है। भारी बारिश जैसी प्राकृतिक स्थितियों को सिरे से नज़रअन्दाज़ करके शहरी विकास हुआ है। पानी के प्राकृतिक निकास के स्थानों - नालों, तालाबों, आदि की जगह क़ानूनी-ग़ैरक़ानूनी इमारतें, सड़कें, मैदान आदि बना दिये गये हैं। शहर में साधारण हालतों के लिए भी सीवरेज निकासी का आवश्यक प्रबन्ध नहीं किया गया। भारी बारिश जैसी प्राकृतिक हालत के दौरान पानी की निकासी के लिए तो शहर में कोई व्यवस्था की ही नहीं गयी। इसके चलते चेन्नई शहर का अधिकतर हिस्सा पानी में डूब गया।

सवाल है कि इसका ज़िम्मेदार कौन है? इसका स्पष्ट तौर पर ज़िम्मेदार समाज का वह तबका है जो अन्धाधुन्ध दौलत जुटाने में लगा हुआ है। वह इसके लिए इंसान और प्राकृतिक स्रोत-संसाधनों की घृणित से घृणित ढंग से लूट करने से गुरेज नहीं कर रहा। चेन्नई में पूँजीपतियों, सरकार व अफ़सरों के गठजोड़ ने क़ानूनी-ग़ैरक़ानूनी तौर-तरीक़ों के ज़रिये नाजायज़ तौर पर ऐसी जगहों पर क़ब्ज़े कर लिये जहाँ से पानी की निकासी हो सकती थी। दौलत कमाने के लिए और अय्याशी के अड्डे स्थापित करने के लिए अन्धाधुन्ध ग़ैरयोजनाबद्ध ढंग से धड़ाधड़ निर्माण कार्य हुआ है। इस दौरान बाढ़, भूकम्प जैसी परिस्थितियों के पैदा होने का ध्यान नहीं रखा गया। नाजायज़ क़ब्ज़ों के लिए ग़रीबों को दोष दिया जा रहा है। झुग्गी-झोंपड़ी में रहने को मज़बूर लोगों के पुख्ता रिहायश के लिए कोई भी क़दम सरकार ने नहीं उठाये। इनके पास रहने के लिए और कोई जगह नहीं है। नाजायज़ क़ब्ज़े करने वाते तो पूँजीपति और सरकारी पक्ष है।

बाढ़ या भूकम्प जैसी परिस्थिति से निपटने के लिए राहत कार्यों के लिए आवश्यक प्रबन्धों की पहले से कोई तैयारी नहीं थी। इसके चलते भी नुक़सान अधिक हुआ है। परिस्थिति बिगड़ने के बाद लोगों को राहत पहुँचाने के बड़े-बड़े दावे किये गये। राज्य व केन्द्र सरकार द्वारा किये जा रहे राहत कार्यों को बढ़ा-चढ़कर पेश किया गया। लेकिन बाढ़ प्रभावितों को न तो समय पर बाढ़ से बाहर निकाला गया, न ही उन्हें पर्याप्त पीने का पानी, भोजन, कपड़े, दवाएँ, आदि सामग्री समय पर पहुँचायी गयी। तमिलनाडू सरकार ने बाढ़ पीड़ितों की आवश्यक मदद न करने का ठीकरा केन्द्र सरकार के सिर फेंकने के लिए, खुद को आर्थिक तौर पर कमज़ोर दिखाते हुए करोड़ों रुपये की मदद केन्द्र सरकार से माँग ली। केन्द्र ने भी माँगी गयी मदद में से कुछ हिस्सा देना ही माना है। इसमें से पीड़ितों तक कितना पहुँचेगा यह समझना मुश्किल नहीं। बाढ़ पीड़ितों की आवश्यक मदद करने की जगह पीड़ितों का हालचाल पूछने व मदद करने की ड्रामेबाज़ी पूरे ज़ोर से की गयी। प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी भी हवाई जहाज़ के ज़रिये चेन्नई शहर का नज़ारा देखने गया। इस दौरे की फ़ोटोशॉप की गयी तस्वीरें पीआईबी द्वारा इण्टरनेट पर डाली गयीं, उनसे सरकार की जनता के दुखों के प्रति असंवेदनशीलता एक बार फिर जगज़ाहिर हो गयी। लोगों पर बरपे क़हर को अपना नाम चमकाने के लिए इस्तेमाल करना मोदी सरकार की कमीनगी की हद तक असंवेदनशीलता है।

दक्षिण भारत में चेन्नई और अन्य शहरों में आयी बाढ़ पहली घटना नहीं है जिसने भारत में हो रहे विकास के विनाशक चरित्र का पर्दाफ़ाश किया है। पिछले समय में जम्मू, केदारनाथ, व अन्य जगहों पर आयी बाढ़ के दौरान मची भारी तबाही ने पूँजीवादी विकास के मानवद्रोही चरित्र को नंगा किया है। भारत के विभिन्न हिस्सों में, शहरों और पर्यटन क्षेत्रों में तबाही के लिए बड़े स्तर पर आधार तैयार हुआ है जो भविष्य में समय-समय पर त्रासदियों का कारण बनता रहेगा।

मुनाफ़े पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था में इन त्रासदियों से छुटकारे और मानवता को केन्द्र में रखकर योजनाबद्ध ढंग से प्रकृति से तालमेल बिठाकर विकास की उम्मीद करना मूर्खता होगी। इसके लिए समाजवादी आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था की ज़रूरत है। चेन्नई जैसी त्रासदियाँ बार-बार हमें पूँजीवादी व्यवस्था की तबाही और समाजवादी व्यवस्था के निर्माण के लिए सामाजिक इंक़लाब की तैयारी के मैदान में कूदने की फ़ौरी ज़रूरत का अहसास करवाती हैं।

- रणबीर

सलमान खान

(पेज 7 से आगे)

दम पर सलमान खान का बरी होना कोई हैरानी वाली बात नहीं है। जिस देश में भोपाल गैस काण्ड के ज़रिये दसियों हज़ार लोगों को मौत के घाट उतार देने के दोषी एण्डरसन को सरकार-पुलिस द्वारा खुद जहाज़ पर चढ़ाकर भाग जाने का मौक़ा दिया जाये और वास्तविक दोषियों को 30 वर्ष गुज़र जाने पर भी सज़ा न सुनायी गयी हो, जहाँ गुजरात, मुज़फ़्फ़रनगर, उड़ीसा, दिल्ली, हाशिमपुर (उत्तरप्रदेश), लक्षमणपुर बाथे (बिहार) आदि जगहों पर हुए मुसलमानों, ईसाइयों, सिखों व दलितों के जनसंहार के दोषी न सिर्फ़ आज़ाद घूम रहे हों बल्कि संसद-विधानसभाओं में मौजूद होने के साथ ही प्रधानमन्त्री तक की कुर्सी पर विराजमान हों, जहाँ निठारी काण्ड का मुख्य दोषी पूँजीपति पंढेर बच्चों का मांस खाकर भी ''बाइज़्ज़त' समाज में आज़ाद घूम रहा हो वहाँ क़त्ल के मामले में सलमान खान का दोषी होकर भी बरी हो जाना हैरानी की बात कैसे हो सकती है? जहाँ जज, वकील, मन्त्री, अफ़सर, पुलिस सब बिकाऊ हों वहाँ जिसके पास दौलत है, वो न्याय ख़रीद सकता है। पूँजीवादी व्यवस्था में जिस तरह अन्य चीज़ें बिकाऊ माल हैं, उसी तरह न्याय भी बिकाऊ माल है। ग़रीब लोग न्याय ख़रीद नहीं सकते इसलिए करोड़ों बेगुनाह जेलों में सड़ रहे हैं। भारत में न्याय व्यवस्था है या अन्याय व्यवस्था इसे समझने के लिए किसी गहरे अध्ययन की ज़रूरत नहीं है। कड़वा सच सबके सामने है।

'ऑड-इवेन' जैसे फ़ॉर्मूलों से महानगरों की हवा में घुलता ज़हर ख़त्म नहीं होगा

पूँजीवाद में प्रदूषण की समस्या का समाधान संभव ही नहीं

दिल्ली सरकार द्वारा दिल्ली में 1 से 15 जनवरी के बीच लागू की गयी ऑड-इवन पॉलीसी सुर्खियों में छायी रही। दिल्ली हाई कोर्ट द्वारा बढ़ते वायु प्रदूषण स्तर को रोकने के लिए 21 दिसम्बर तक राज्य और केन्द्र सरकारों को योजना बनाये जाने का आदेश दिया गया था जिसके तहत केजरीवाल सरकार ने दिल्ली में ऑड-इवन पॉलीसी को पंद्रह दिनों तक कार्यान्वित करने की योजना बनाई। इस योजना के तहत ऑड (विषम) संख्याओं वाले वाहन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को और इवन (सम) संख्याओं वाले वाहन बाकी बचे हुए दिन सड़कों पर दौड़ सकते थे जबकि रविवार को दोनों संख्याओं वाले वाहनों को सड़क पर उतरने की छूट दी गयी।

ग़ौरतलब है कि पिछले कुछ समय से लगातार अलग-अलग हलकों से बढ़ते वायु प्रदूषण को लेकर चिंताएँ प्रकट की जा रही हैं और इसे रोकने के लिए कई कवायदों का दौर भी चल रहा है। सुप्रीम कोर्ट के हालिया आदेश के अनुसार दिल्ली में 10 साल पुराने वाहनों के आवागमन और 2000 सीसी से अधिक के डीज़ल वाहनों के रजिस्ट्रशन को प्रतिबंधित करने का आदेश दिया जाना, एन जी टी द्वारा दिल्ली में सभी प्रकार के डीज़ल वाहनों के रजिस्ट्रेशन पर रोक के आदेश और दिल्ली व आसपास के इलाकों में 10 साल पुराने डीज़ल व 15 साल पुराने पेट्रोल वाहनों पर प्रतिबंध इन कवायदों की चंद मिसालें हैं।

प्रदूषण की समस्या वाकई एक विकराल समस्या बनकर खड़ी हो चुकी है और अब मानव जीवन का असित्तव ही दांव पर लग गया है। बहरहाल, आइए इसे कुछ आँकड़ों से समझने की कोशिश करें। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' (डब्लू एच ओ) की 2014 की एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के 20 अत्याधिक प्रदूषित शहरों में से 13 शहर भारत के पाये गए थे। इन 20 शहरों की फेहरिस्त में से दिल्ली सबसे प्रदूषित शहर था। 'सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट' नामक एक संस्था की वर्ष 2015 की रिपोर्ट बताती है कि दिल्ली में प्रदूषण का स्तर डब्लू एच ओ द्वारा प्रस्तावित मानक से 12 गुणा अधिक पाया गया है। यही नहीं दिल्ली में प्रतिवर्ष प्रदूषण जनित बीमारियों से 10,000 से 30,000 मौतें हो जाती हैं। भारत के पैमाने पर प्रतिवर्ष प्रदूषण से होने वाली इन मौतों का आँकड़ा 6 लाख 45 हज़ार है। ज़ाहिर है यह आँकड़े प्रदूषण की समस्या की भयावहता को समझाने के लिए पर्याप्त होंगे। इन हालातों में यह जानना दिलचस्प होगा कि दिल्ली सरकार द्वारा प्रदूषण के स्तर को कम करने के लिए की जाने वाली ऑड- इवन कवायद कितनी कारगर साबित हो सकती है! वैसे तो गौर करने लायक तथ्य यह भी है कि केजरीवाल सरकार द्वारा लागू की जाने वाली यह कोई अनूठी योजना नहीं है। ऐसे प्रयास पहले भी कई देशों में लागू किए जा चुके हैं जो विफल साबित हुए हैं। वर्ष 1989 में मेक्सिको शहर में इसी प्रकार की ही एक योजना लागू की गयी थी जिसके अंतर्गत हर वाहन को सप्ताह के किसी एक दिन सड़क पर चलने से प्रतिबंधित किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों ने अतिरिक्त वाहन खरीदने शुरू कर दिए ताकि हर रोज़ वे अपने वाहन का इस्तेमाल कर सकें जो नये नियम के कारण संभव नहीं हो पा रहा था। चीन के बीजिंग शहर में 2008 के ऑलमपिक्स खेलों के आसपास इसी प्रकार की कसरतें की गयी। हालाँकि लोगों ने वहाँ पर भी एक गाड़ी के बावजूद दूसरी गाड़ी खरीदी जिसकी वजह से कारों की खरीद में 30 प्रतिशत की बढ़ोतरी दर्ज की गयी। यही नहीं, इस नियम से बचने के लिए फर्जी नम्बर प्लेट भी बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किये जाने लगे।

इन उदाहरणों से अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि प्रदूषण को कम करने के नाम पर ऑड-इवन जैसी नीम हकीमी कवायदें भले ही कुछ समय तक बेहद चुस्ती से लागू होती हुई नज़र आ भी जाएं पर अनुभव बताते हैं कि लम्बे दौर में ऐसे प्रयास विफल ही साबित हुए हैं और इनकी विफलता का कारण विकास के पूँजीवादी मॉडल में मौजूद हैं। पूँजीवादी राज्य व्यवस्थाएँ सार्वजनिक परिवहन की सेवाओं को लगातार सिकोड़ती जाती है और इस तरह निजी वाहनों को बढ़ावा देकर ऑटोमोबाइल सेक्टर में लगी पूँजी के हित में अपनी चाकरी बजाती हैं। अगर देश की राजधानी का ही उदाहरण लें तो दिल्ली में प्रतिदिन 1500 नए वाहनों का पंजीकरण किया जाता है। वर्ष 2000-01 में जहाँ प्रति हज़ार व्यक्ति वाहनों की संख्या 244 थी वहीं 2014-15 तक आते-आते यह संख्या 487 हो गयी। 2015 तक दिल्ली में कुल वाहनों की संख्या 88,27,431 थी जिसमें से 64.36 प्रतिशत मोटरसाइकलें और स्कूटर, 31.61 प्रतिशत कारें और जीप, टैक्सी और ऑटो दोनों एक-एक प्रतिशत और बसें केवल 0.22 प्रतिशत थी। वर्ष 2000-01 में बसों की संख्या जहाँ 41,483 थी वहीं 2014-15 तक यह संख्या 19,729 पहुँच गयी। निजी वाहनों के उत्पादन से ऑटोमोबाइल सेक्टर में होने वाले मुनाफ़े का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वर्ष 2013-14 में इस सेक्टर का कारोबार तीन लाख करोड़ रूपये से अधिक था। इसी से जुड़े तेल उद्योग में होने वाले अकूत मुनाफे का अंदाज़ा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि वर्ष 2013-14 में अकेले 'इंडियन ऑयल' का सालाना कारोबार साढ़े चार लाख करोड़ से अधिक था। विशेषज्ञों का अनुमान है कि वर्ष 2040 तक पेट्रोलियम उत्पादों की माँग में ढ़ाई गुणा की बढ़ोतरी होगी जिससे इस कारोबार में लगने वाली पूँजी, उससे होने वाला मुनाफ़ा तथा वायु प्रदूषण में बढ़ोतरी का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। मुनाफ़ा पैदा करने के एकमात्र मक़सद से संचालित पूँजीवादी उत्पादन तंत्र स्वयं स्फूर्त गति से निरंतर प्रकृति को नष्ट करता ही रहेगा इसलिए ऑड-इवन या उस जैसी कोई भी कवायद पूँजीवाद द्वारा प्रकृति के विनाश को रोकने में असमर्थ है।

मज़ेदार बात यह है कि पूँजीवाद मुनाफे की हवस के चलते प्रकृति की तबाही तो करता ही है और फिर इस तबाही से नये मुनाफे पैदा करने की नई तरकीबें भी निकाल लेता है। मसलन, चीन में हवा को जानलेवा हदों तक ज़हरीला बना देने के बाद अब वहाँ पूँजीपतियों ने लोगों को ताज़ा हवा बेचने का धंधा शुरू कर दिया है। 'वॉयटेलिटी एयर' नाम की कम्पनी ताज़ा व स्वच्छ हवा को बोतलों और कैनों में बंद करके माल बनाकर चीन में बेच रही हैं। शुद्ध हवा के एक कनस्तर की कीमत 3036 रूपये है! वैसे एयर फिल्टर का कारोबार भारत में जिस तेज़ी से बढ़ा रहा है उसे देखते हुए आश्चर्य नहीं कि जल्द ही भारतीय पूँजीपति भी शुद्ध हवा की बोतलें बेचने के धंधे में उतर आएं और आम जनता को शुद्ध हवा बेचने लगें।

कुछ लोग अकसर इस भ्रम का शिकार रहते है कि कानूनों को सही तरीके से लागू करके पूँजीपतियों पर लगाम कसी जा सकती है और वे अपनी बात के समर्थन में प्राय: यूरोप और अमेरिका का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। हालाँकि हालिया घटनाक्रम उनके इस भ्रम को तोड़ने के लिए काफी है। 'वॉक्सवैगन' नाम की कम्पनी ने यूरोप में उत्सर्जन कानूनों से बच निकलने के लिए गाडियों में ऐसे साफ्टवेयर लगाये जो प्रदूषण जाँच के दौरान तो उत्सर्जन को सामान्य स्तर पर दिखलाता था पर वास्तव मे बाकी समय उन गाडियों का उत्सर्जन स्थापित मानकों से 40 गुणा अधिक होता था। पूँजीपति वर्ग जब अपने मुनाफ़े पर ख़तरा मंडराता देखता है तब अपनी ही राज्य व्यवस्था द्वारा बनाये गए कानूनों की धज्जियां उड़ाने में उसे ज़रा भी हिचक नहीं होती है।

यह महज़ एक ख़ामख्याली है कि पूँजीवाद के दायरे के भीतर प्रदूषण की समस्या का हल संभव है। माल उत्पादन और मुनाफ़े की मानवद्रोही व्यवस्था मानव जीवन की बर्बादी का सबब तो बनती ही है साथ ही तात्कालिक मुनाफे की अंधी हवस में वह प्रकृति को भी अपना शिकार बनाती है। मुनाफे की इसी तात्कालिकता के चलते पूँजीपति उर्जा के तमाम वैकल्पिक स्रोतों में पूँजी निवेश नहीं करता है जबकि विज्ञान प्रकृति के अनुकूल उर्जा स्रोतों और उनका दोहन करने वाली तकनीकों की खोज पहले ही कर चुका है। यह बिल्कुल संभव है कि उद्योगों में इस्तेमाल की जाने वाली तकनीकों को इस कदर बदल दिया जाय कि हर किस्म के प्रदूषण को न्यूनतम स्तरों तक लाया जा सके लेकिन माल उत्पादन की वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था यह होने नहीं देगी। ज़ाहिर है कि प्रदूषण की समस्या को हल करने की दिशा में तो केवल एक मानवकेंद्रित व्यवस्था ही आगे बढ़ सकती है।

– श्वेता

भारतीय ''न्याय व्यवस्था'' का एक और अन्याय : मज़दूरों का क़ातिल सलमान खान बरी

27 सितम्बर 2002 की रात मुम्बई के बान्द्रा इलाक़े में एक कार ने सड़क किनारे सो रहे चार व्यक्ति कुचल दिये थे। तीन को गम्भीर चोटें आयीं और एक की मौत हो गयी। इस कार में फ़िल्म अभिनेता सलमान खान, पुलिस मुलाजिम रविन्दर पाटिल (सलमान की सुरक्षा के लिए तैनात), और पाकिस्तानी गायक कमाल खान मौजूद था। पुलिस मुलाजिम रविन्दर पाटिल ने पुलिस व मजिस्ट्रेट के सामने दिये बयान में कहा था कि सलमान ने शराब पीकर तेज़ रफ़्तार कार चलाने के दौरान सड़क किनारे सो रहे व्यक्तियों को कुचला था। रविन्दर पाटिल ने कहा था कि उसने शराब के नशे में धुत सलमान खान को तेज़ गाड़ी चलाने से मना किया था, लेकिन वह नहीं माना। कमाल खान का कोई बयान पुलिस के पास दर्ज नहीं है। इस मामले में बीती 6 मई को सेशन कोर्ट में सलमान खान को पाँच वर्ष की क़ैद की सज़ा सुनायी गयी थी। उसे उसी दिन काम का समय ख़त्म होने के बावजूद हाईकोर्ट से स्वास्थ्य कारणों का बहाना बनाकर जमानत दे दी गयी थी। अब 10 दिसम्बर को हाईकार्ट ने उसे बरी भी कर दिया।

बॉम्बे हाईकोर्ट का कहना है कि सलमान खान के ख़िलाफ़ कोई भी ठोस सबूत नहीं है! रविन्दर पाटिल को अपना बयान बदलने के लिए बहुत डराया-धमकाया गया लेकिन वह अपने बयान पर डटा रहा। उसे एक झूठे केस में फँसाकर जेल में डाल दिया गया। जेल में बीमार होने के बाद अस्पताल में सन्दिग्ध परिस्थितियों में उसकी मौत हो गयी। सेशन कोर्ट ने उसके बयान को एक पुख्ता सबूत माना था लेकिन हाईकोर्ट ने उसकी गवाही को भरोसेलायक नहीं माना। बेशर्मी की हद देखें। तेरह साल बाद अशोक कुमार नाम के एक व्यक्ति को हाईकोर्ट में पेश किया गया जिसने कहा कि वह सलमान खान की कार चला रहा था। हाईकोर्ट के जज ने ''सच'' बोलने के लिए अशोक की जमकर तारीफ़ की और उसकी गवाही को ''ठोस सबूत'' के तौर पर माना। 13 साल बाद अचानक प्रगट हुए अशोक की गवाही सही मानी गयी, लेकिन सच के लिए डटे रहे रविन्दर पाटिल को झूठा करार दे दिया गया। हाईकोर्ट ने सुहेल खान के बॉडीगार्ड व मौक़े पर मौजूद अन्य व्यक्तियों के बयानों को नज़रअन्दाज़ कर दिया जिनके मुताबिक़ सलमान खान के साथ रविन्दर पाटिल और कमल खान के अलावा और कोई नहीं था। सलमान खान, सेशन कोर्ट और हाईकोर्ट ने माना है कि सलमान खान उस रात अपने भाई सुहेल खान व अन्य व्यक्तियों से साथ बार में गया था। पुलिस द्वारा बार के बिल कोर्ट में पेश किये गये थे। सेशन कोर्ट ने माना था कि सलमान खान ने शराब पी थी। सलमान खान ने कहा कि उसने तो वहाँ सिर्फ़ निम्बू पानी पीया था! हाईकोर्ट ने यह बात मान भी ली!! कुल मिलाकर नतीजा यह निकला कि हाईकोर्ट की असीम कृपा से सलमान खान ''बाइज़्ज़त'' बरी हो गया।

सलमान खान एक ''बड़ा आदमी'' है। उसके पास कितना पैसा है इसका कोई हिसाब नहीं। राजनीतिक पार्टियों, सरकार, अफ़सरशाही में उसका मज़बूत असर-रसूख होना स्वाभाविक बात है। इसका मतलब यह नहीं कि इस ढाँचे में उसका कोई दुश्मन नहीं। ''बड़े लोगों'' की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक आदि कारक, आपसी झगड़े भी एक-दूसरे को रगड़ा लगाते रहते हैं। इसी कारण ही अपने सारे असर-रसूख के बावजूद भी सेशन कोर्ट में सलमान खान को पाँच साल की सज़ा सुना दी गयी थी। लेकिन जितना बड़ा अपराध उसने किया था उसके मुताबिक़ यह सज़ा भी कम थी। हाईकोर्ट में इस फ़ैसले का पलटना दिखाता है कि सलमान खान का पलड़ा अब भारी हो गया है। ऊपरी तबके में विरोधियों के साथ इसका समझौता कोई हैरानी की बात नहीं है। बिना शक मोदी संग पतंग उड़ाये जाने, 'बजरंगी भाईजान' जैसी हिन्दुत्वी कट्टरपन्थियों को मुनासिब बैठती फ़िल्म बनाने, असहनशीलता के मुद्दे पर चुप्पी साधने आदि के ज़रिये भाजपा को दी गयी हिमायत का उसे काफ़ी फ़ायदा हुआ है।

पैसे और सियासी असर-रसूख के

(पेज 6 पर जारी)

नये साल में मज़दूर वर्ग को फासीवाद की काली घटाओं को चीरकर आगे बढ़ने का संकल्प लेना ही होगा

(पेज 1 से आगे)

लेकिन वास्तव में देश के अधिकांश नौजवानों को रोजी-रोटी की तलाश में दर-दर भटकने से निजात नहीं मिली। बेरोज़गारी का आलम यह रहा कि उत्तर प्रदेश में चपरासी के 368 पदों के लिए 23 लाख से भी ज़्यादा नौजवानों ने आवेदन किया जिनमें पीएच.डी. और एमबीए के डिग्रीधारक भी शामिल थे। इस नंगी सच्चाई पर पर्दा डालने के लिए पिछले साल आरक्षण का जुमला ख़ूब उछाला गया। कोई आरक्षण को हटाने की माँग करते नज़र आये तो कोई कुछ अन्य जातियों को आरक्षण के दायरे में लाने की बात करते नज़र आये। इस प्रक्रिया में देश के नौजवानों को जाति के नाम पर बाँटने की साज़िशें अपने परवान पर दिखीं। इसके अलावा मोदी सरकार की 'स्मार्ट सिटी' के हवाई क़िलों की कलई चेन्नई में बारिश के बाद आयी बाढ़ के ख़ौफ़नाक मंज़र से खुल गयी।

पिछले साल आम बजट में कारपोरेट करों की दर 30 से घटाकर 25 प्रतिशत कर दी गयी जिससे आम जनता पर 23,383 करोड़ रुपये का बोझ अप्रत्यक्ष करों के रूप में पड़ेगा। वहीं दूसरी ओर धन्धा करना आसान बनाने के नाम पर पूँजीपतियों को दिल खोलकर रियायतें दी गयीं। स्वदेशी व राष्ट्रवाद की माला जपने वाली भाजपा की सरकार ने बीमा, रक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भारी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की छूट दी। इसी तरह से उसने औद्योगिक पूँजीपतियों द्वारा किसानों की ज़मीन हड़पने को आसान बनाने के वास्ते भूमिअधिग्रहण बिल पास कराने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया, हालाँकि जनदबाव के चलते इस दाँव में वह सफल नहीं हो सकी।

गुज़रे साल संघ परिवार के नरभक्षी फ़ासिस्ट गुण्डों ने देशभर में अपनी हैवानियत का नंगा नाच किया। इन संघी गुण्डों ने अपने आपको गाली-गलौच और तोड़-फोड़ की कार्रवाइयों तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि नरेन्द्र मोदी के प्रधानमन्त्री बनने के बाद 'सैंया भये कोतवाल तो डर काहेका' की कहावत को चरितार्थ करते हुए लोगों की सरेआम हत्याएँ करने से भी कोई गुरेज़ नहीं किया। नरेन्द्र दाभोलकर की हत्या के बाद इन आतंकियों ने पिछले साल महाराष्ट्र के कोल्हापुर में बुज़ुर्ग वामपन्थी नेता गोविन्द पानसरे और कर्नाटक के धारवाड़ में कन्नड़ विद्वान व तर्कशील चिन्तक एम.एम. कलबुर्गी की नृशंस हत्या कर दी। उनके हत्यारे अभी भी बेधड़क घूम रहे हैं और संघ परिवार के हिन्दुत्ववादी राष्ट्रवाद के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखने वाले बुद्धिजीवियों, इतिहासकारों, पत्रकारों, कलाकारों आदि को धमका रहे हैं एवं घृणित क़िस्म के गाली-गलौज के ज़रिये अपनी हिन्दुत्ववादी संस्कृति की नुमाइश कर रहे हैं।

इसके अलावा देश के अलग-अलग हिस्सों में संघ परिवार से जुड़े क़िस्म-क़िस्म के संगठन शहरों की निम्न मध्यवर्गीय कालोनियों और मज़दूर बस्तियों और यहाँ तक कि कस्बों और गाँवों तक में अभूतपूर्व रूप से अपना जाल फैला रहे हैं और लव-जिहाद, बीफ़ खाने और धर्मान्तरण से जुड़ी अफ़वाहें उड़ाकर लोगों के धार्मिक-सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों का लाभ उठाकर अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ साम्प्रदायिक नफ़रत को लोगों की नसों में घोल रहे हैं। इस नफ़रत की चरम अभिव्यक्ति दादरी में अखलाक की दर्दनाक हत्या के रूप में सामने आयी। गोमांस सेवन की अफ़वाह उड़ाकर इंसानों की हत्या के कम-से-कम दो और मामले प्रकाश में आये। इसके अलावा संघ परिवार से जुड़े संगठन क़ानून व्यवस्था को धता बताते हुए आये दिन गोमांस के सेवन के विरोध के नाम पर बेधड़क गुण्डागर्दी और तोड़-फोड़ की घटनाओं को अंजाम देते रहे।

भाजपा व संघ परिवार के आनुषंगिक संगठनों से जुड़े तमाम नेता मोदी सरकार की आलोचना करने वाले हर व्यक्ति को देशद्रोही का ख़िताब और पाकिस्तान जाने की हिदायत देते रहे। सत्ता के नशे में चूर भगवा फ़ासिस्टों का मन इतना बढ़ गया कि भाजपा के अध्यक्ष तक ने यह बात सार्वजनिक रूप से कही कि अगर बिहार विधान सभा चुनावों में भाजपा हार गयी तो पाकिस्तान में पटाखे फूटेंगे। यह बात दीगर है कि अपनी तमाम मानवद्रोही हरकतों के बावजूद विधानसभा चुनावों में भाजपा को बुरी तरह मुँहकी खानी पड़ी। देशभर में असहिष्णुता का माहौल इतना घुटन भरा हो गया कि 50 से भी अधिक लोगों ने अपने राष्ट्रीय पुरस्कार वापस लौटा दिये जिनमें तमाम साहित्यकार, रंगकर्मी, फ़िल्मकार और वैज्ञानिक शामिल थे। यह नरेन्द्र मोदी सरकार के मुँह पर करारा तमाचा था, लेकिन बेशर्म फ़ासिस्ट इससे कोई सबक़ भला कहाँ लेने वाले थे। उन्होंने इन साहित्यकारों, फ़िल्मकारों और वैज्ञानिकों के ख़िलाफ़ भी दुष्प्रचार की मुहिम छेड़ दी।

शिक्षा संस्थानों समेत समूचे अकादमिक जगत के भगवाकरण की मुहिम पिछले साल अपने चरम पर दिखी। भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद, भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारतीय जनसंचार संस्थान, आईआईएस, आईआईटी, आईआईएम और अनेक विश्वविद्यालयों में प्रमुख पदों पर ऐसे लोगों को नियुक्त किया गया जिनकी सबसे बड़ी योग्यता यह है कि वे संघ से जुड़े हुए हैं। फ़िल्म एवं टेलीविज़न इंस्टीट्यूट ऑफ़ इण्डिया (एफ़टीआईआई) की गवर्निंग काउंसिल के अध्यक्ष पद पर संघ समर्थक और अश्लील फ़िल्मों के हीरो गजेन्द्र चौहान की नियुक्ति की गयी जिसके विरोध में एफ़टीआईआई के छात्रों ने शानदार संघर्ष छेड़ा जो अब भी जारी है। उच्च शिक्षा संस्थानों के भगवाकरण के साथ ही साथ नवउदारवादी नीतियाँ भी तेज़ी से लागू की गयीं जिसका सबसे बड़ा उदाहरण यूजीसी द्वारा नॉन-नेट फ़ेलोशिप को ख़त्म करने की घोषणा थी जिसके ख़िलाफ़ छात्रों का 'ऑक्युपाई यूजीसी' आन्दोलन उठ खड़ा हुआ जो दमन की तमाम कोशिशों के बावजूद अभी तक जारी है।

भगवा फ़ासिस्टों के शासन में पिछले साल साम्प्रदायिकता का ज़हर तो फैला ही, साथ ही साथ जातिगत उत्पीड़न की घटनाओं में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई। संघ के प्रचारक रह चुके मनोहरलाल खट्टर के शासन वाले हरियाणा में फ़रीदाबाद के सुनपेड़ गाँव में नवधनाढ्य दबंगों द्वारा एक दलित परिवार को ज़िन्दा जला दिया गया। इस भयंकर बर्बर घटना में दो मासूम बच्चे ज़िन्दा जलकर मारे गये और उनके माँ और पिता बुरी तरह से घायल हो गये। इससे पहले मई में राजस्थान के डांगावास में और उत्तर प्रदेश के दनकौर में भी ग़रीब मेहनतकश दलितों पर ऐसे ही जुल्म ढाये गये हैं। विशेष तौर पर, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और तमिलनाडु में इन दलित-विरोधी अपराधों में बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी। और इन सारे हत्याकाण्डों के अपराधियों को आमतौर पर सज़ा नहीं मिली।

दलित विरोधी अपराधों के साथ ही साथ महिला विरोधी अपराधों में भी कोई कमी देखने में नहीं आयी। लोकसभा चुनावों से पहले 'बहुत हुआ नारी पर वार, अबकी बार मोदी सरकार' का जुमला उछालने वाले मोदी की सरकार बनने के बाद भी पिछले साल देश के अलग-अलग हिस्सों में घरों, सड़कों, बाज़ारों से लेकर फ़ैक्टरी-दफ़्तरों में महिलाओं के ख़िलाफ़ बर्बर अपराध अंजाम दिये जाते रहे और क़ानून व्यवस्था मुँह ताकती रही। दिल्ली में अरविन्द केजरीवाल की आम आदमी पार्टी ने भी विधानसभा चुनाव से पहले महिलाओं की सुरक्षा को लेकर लम्बी-चौड़ी डींगें हाँकी थीं, लेकिन उसकी सरकार बनने के बाद भी दिल्ली में महिलाओं की सुरक्षा नहीं बढ़ी।

दिल्ली विधानसभा चुनाव में अरविन्द केजरीवाल की आम आदमी पार्टी की ऐतिहासिक जीत के बाद तमाम बुद्धिजीवियों ने इस पार्टी से उम्मीद लगा ली कि वह जनपक्षधर निकलेगा। लेकिन ऐसे बुद्धिजीवियों की उम्मीद बहुत ज़्यादा दिनों तक नहीं टिकी क्योंकि सत्ता सँभालते ही इस पार्टी में मची खींचतान में इसीके वरिष्ठ नेताओं ने केजरीवाल के तानाशाहाना आचरण का पर्दाफ़ाश कर दिया। उसके बाद दिल्ली में ठेका प्रथा को ख़त्म करने की माँग को लेकर प्रदर्शन कर रहे मज़दूरों पर पुलिस से बर्बर लाठीचार्ज कराने की घटना ने केजरीवाल सरकार के मज़दूर विरोधी चरित्र को पूरी तरह से बेनक़ाब कर दिया और यह साबित कर दिया कि केजरीवाल भी पूँजीवाद का ही एक दलाल है। बाद में दिल्ली के अलग-अलग हिस्सों में मेहनतकशों की झुग्गियाँ तोड़ने के मामले में भी इस पार्टी का जनविरोधी चरित्र उजागर हुआ।

अन्तरराष्ट्रीय पटल पर पिछले साल विश्वव्यापी मन्दी के दौर में अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा ने तीखा रूप अख़्तियार कर लिया जिसकी वजह से दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में युद्धों एवं आतंकी कार्रवाइयों में निर्दोषों के मारे जाने की रफ़्तार बढ़ी। मध्य-पूर्व के इलाक़े में साम्राज्यवाद के अन्तरविरोध अपने चरम रूप में उभरे। अमेरिकी साम्राज्यवाद की सरपरस्ती में सऊदी अरब के निरंकुश बर्बर हुक्मरानों ने यमन पर हमला करके ज़बर्दस्त तबाही मचायी। सीरिया में जारी गृहयुद्ध ने और अधिक हिंसात्मक रूप अख़्तियार किया। अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा पाले-पोसे गये इस्लामिक स्टेट नामक भस्मासुर ने सीरिया में बड़े पैमाने पर मौत का ताण्डव रचा। सीरिया में रूस का सैन्य हस्तक्षेप अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा के तीखे होने का स्पष्ट प्रमाण था। पेरिस आतंकी हमले के बाद पश्चिमी साम्राज्यवादी खेमे में दरकनें भी साफ़ नज़र आने लगीं, जब फ़्रांस सहित कई यूरोपीय देश इस्लामिक स्टेट के ख़ात्मे की वकालत करते हुए पाये गये।

सीरिया व इराक़ में जारी युद्धों की वजह से लाखों की संख्या में शरणार्थियों ने क़ानूनी और ग़ैर-क़ानूनी तरीक़ों से यूरोपीय देशों में पनाह लेने की कोशिशें की जिससे एक ज़बर्दस्त शरणार्थी संकट पैदा हुआ जिसका समाधान निकट भविष्य में नहीं दिखता। शरणार्थियों के मामले को देखने वाली संयुक्त राष्ट्र की संस्था यूएनएचसीआर के मुताबिक़ दुनियाभर में शरणार्थियों की संख्या आज 6 करोड़ का आँकड़ा पार कर चुकी है जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सबसे ज़्यादा है। उधर फ़िलिस्तीन में इज़रायली बर्बरता बदस्तूर जारी रही, लेकिन फ़िलिस्तीनियों ने भी अपना संघर्ष जारी रखा है और साल के अन्त तक आते-आते उन्होंने इज़रायली हमलों और जायेनवादी बर्बरता के ख़िलाफ़ मुहिम छेड़ दी जिसे तीसरे इन्तिफ़ादा की शुरुआत भी कहा जा रहा है।

तीखी होती अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा की एक अन्य अभिव्यक्ति अमेरिका और चीन के बीच दक्षिण चीन सागर में तीखी नोक-झोंक के रूप में देखने को आयी, जब पिछले साल अक्टूबर के आख़िरी हफ़्ते में एक अमेरिकी समुद्री युद्धपोत यू.एस.एस. लासेन दक्षिण चीन समुद्र में चीनी क्षेत्र के भीतर दाख़िल हुआ। इस पोत के साथ एक जासूसी विमान भी था। इस घटना के बाद अमेरिका और चीन के बीच तनाव बढ़ा।

विश्व पूँजीवाद के जिन रहनुमाओं ने विश्वव्यापी मन्दी के इस दौर से निकलने के लिए अपनी उम्मीदें चीन पर टिका रखी थीं, उन्हें पिछले साल बहुत निराशा हाथ लगी। चीनी अर्थव्यवस्था का गुब्बारा पिछले साल इतनी तेज़ी से फूटा कि उसके कम्पन से दुनियाभर के शेयर मार्केट औंधे मुँह गिर पड़े। चीन के नक़ली कम्युनिस्टों ने वहाँ जनता को जो गुलाबी सपने दिखाये थे वे अब दु:स्वप्न में तब्दील हो चुके हैं और वहाँ की जनता के मोहभंग का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वहाँ मज़दूर आन्दोलनों, हड़ताल, धरनों की संख्या में ज़बर्दस्त बढ़ोतरी हुई है जिनकी ख़बरें चीन की फ़र्ज़ी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व वाली सामाजिक फ़ासीवादी सत्ता द्वारा लगाये गये तमाम प्रतिबन्धों के बावजूद दुनियाभर में फैलीं।

पिछले साल की राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं पर सरसरी नज़र दौड़ाने से हमें इस साल की चुनौतियों का सहज ही अन्दाज़ा हो जाता है। विश्वव्यापी मन्दी से निजात मिलने के कोई आसार इस साल भी नज़र नहीं आ रहे हैं। उल्टे मन्दी के गहराने के संकेत साफ़ दिख रहे हैं। साम्राज्यवाद के हितपोषण में जीजान से जुटी संस्था विश्व बैंक की एक हालिया रिपोर्ट में बहुत अफ़सोस के साथ कहा गया है कि वर्ष 2016 में मन्दी के और गहराने के आसार हैं। पश्चिमी देशों में जारी मन्दी तो क़ायम रहेगी ही, विश्व बैंक की रिपोर्ट में इस साल ब्रिक्स देशों (ब्राज़ील, रूस, भारत, चीन, दक्षिण अफ़्रीका) में भी मन्दी के गहराने का अन्देशा जताया गया है। भारत की अर्थव्यवस्था पर भी मन्दी के काले बादल मँडरा रहे हैं। 'मेक इन इण्डिया' की मुहिम में करोड़ों रुपये फूँकने के बावजूद पिछले साल में भारत के निर्यात में रिकॉर्ड गिरावट देखने में आयी। औद्योगिक उत्पादन में मन्दी से उबरने के कोई संकेत नहीं दिख रहे हैं। इस साल अर्थव्यवस्था में ज़बर्दस्त मन्दी के आसार से हुक्मरान कितने घबराये हुए हैं, इसका अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि हाल ही में प्रधानमन्त्री कार्यालय ने देश के प्रमुख अर्थशास्त्रियों को पत्र लिखकर भारतीय अर्थव्यवस्था में सम्भावित मन्दी से निपटने के तरीक़ों के बारे में राय देने को कहा है ताकि पूँजीपतियों का मुनाफ़ा बरकरार रखा जा सके।

इतना तय है कि आने वाले दिनों में मोदी सरकार अपने आक़ा पूँजीपतियों की ख़ुशामद में मज़दूर-विरोधी विधेयकों को संसद की मंज़ूरी दिलाने के लिए अपना पूरा ज़ोर लगायेगी। मज़दूर वर्ग को इन तथाकथित श्रम सुधारों के मज़दूर-विरोधी चरित्र को

(पेज 9 पर जारी)

अर्थव्यवस्था का संकट और मज़दूर वर्ग

(पेज 1 से आगे)

को कभी नहीं भूलना चाहिए। यह संकट दोधारी तलवार होता है जहाँ यह क्रान्तिकारी परिस्थिति पैदा करता है वहीं दूसरी तरफ़ यह प्रतिक्रान्तिकारी ताक़तों के उभार को जन्म देता है। यह हमें इस बात को दोहराने के लिए मजबूर करता है कि आज हमारे सामने दो ही विकल्प हैं - **समाजवाद या बर्बरता।** आज दुनियाभर में दक्षिणपन्थी ताक़तों का उभार इस चुनौती को सीधे हम तक पहुँचा रहा है।

मार्क्स और एंगेल्स ने 19वीं शताब्दी में ही बताया था कि पूँजीवाद में संकट पैदा होना इसके आन्तरिक अन्तरविरोध के कारण है। सामाजिक उत्पादन और निजी हस्तगतीकरण के अन्तरविरोध के कारण यह व्यवस्था ख़ुद अपनी क़ब्र खोदने वाले मज़दूर वर्ग को पैदा करती है। इसी अन्तरविरोध के कारण बाज़ार में अतिउत्पादन की वजह से आर्थिक संकट आता है जो आर्थिक मन्दी के एक लम्बे ठहरावग्रस्त दौर को पैदा करता है। दरअसल तेज़ी, संकट और मन्दी के चक्कर में उलझते हुए ही यह व्यवस्था आगे बढ़ी है। परन्तु यह मन्दी मज़दूर वर्ग के हिस्से में भयंकर तबाही लाती है क्योंकि मालिक और उनकी सरकारें आर्थिक संकट और उसके बाद छाने वाली मन्दी का सारा बोझ मज़दूरों के ऊपर ही डालते हैं। लेकिन 1970 के बाद से तो जैसे विश्व आर्थिक व्यवस्था ने कोई तेज़ी का दौर देखा ही नहीं है - बस एक मन्द-मन्द मन्दी का लम्बा दौर चल रहा है।

पूँजीवाद के अस्तित्व में आने के समय मुनाफ़े की बन्दरबाँट मुक्त व्यापार के ज़रिये होती थी। लेकिन बाज़ार की होड़ में बड़ी मछली द्वारा छोटी मछली को खा जाने के तर्क से आगे चलकर मुक्त व्यापार इज़ारेदार या एकाधिकारी पूँजीवाद में बदल गया। साम्राज्यवादी व्यवस्था में उत्पादन का संचालन कुछ इज़ारेदार कम्पनियाँ करती हैं। अमेरिका में पूरे देश के उत्पादन का लगभग 90 प्रतिशत महज़ 1 प्रतिशत कम्पनियों की फ़ैक्टरियों में पैदा होता है। इस दौर में दुनियाभर में पूँजी का ज़बरदस्त आवागमन होता है और पूरी दुनिया को तमाम बड़े-बड़े ट्रस्ट और कार्टेल अपने मुनाफ़े के लिए बाँट लेती हैं। परन्तु इस दौर में एक बदलाव यह आया है कि आर्थिक संकट पहले मुक्त बाज़ार में देशों के स्थानीय बाज़ार तक सीमित रहता था पर अब उसका चरित्र वैश्विक हो गया है। अब गुड़गाँव की मन्दी का सम्बन्ध चीन के शेयर बाज़ार में उथल-पुथल से हो सकता है।

जर्मनी में फासीवाद का उभार जिन परिस्थितियों में हुआ, उससे आज हमें सबक सीखने की ज़रूरत है। आर्थिक संकट में मज़दूरों के आन्दोलन के तले दबे जर्मन बुर्जुआ वर्ग ने हिटलर की नाज़ी पार्टी को सत्ता में पहुँचाने का रास्ता साफ़ किया और हिटलर ने नस्ली जुनून भड़काकर सत्ता हासिल कर ली। सत्ता में आने के बाद उसने मज़दूरों का बर्बर दमन किया। यूनियनों को तबाह कर दिया गया। 70 लाख यहूदी मौत के घाट उतार दिये गये। दुनिया को युद्ध की आगे में झोंक दिया गया। लेकिन हिटलर के इस उभार को रोका जा सकता था। आर्थिक संकट पूँजीवादी व्यवस्था का संकट होता है और क्रान्तिकारी ताक़तें मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में जनता को संगठित कर पूँजीवादी व्यवस्था को पलट सकती हैं। 1930 के दौर में आयी मन्दी के बाद और उसके पहले खड़े हुए मज़दूर आन्दोलन पर एक नज़र डालकर इसे समझा जा सकता है। 1930 के बाद अमरीका में मज़दूरों का ज़बरदस्त आन्दोलन खड़ा हुआ। इसने पहली बार अश्वेत मज़दूरों को राजनीतिक परिदृश्य पर श्वेत मज़दूरों के साथ ला खड़ा किया। जहाँ इस संकट में जर्मनी के मज़दूर वर्ग ने ज़बरदस्त कुर्बानियाँ दीं, वहीं समाजवादी रूस के मज़दूर वर्ग का इस मन्दी पर कोई असर नहीं था। भारत में भी 1928 के बाद से ज़बरदस्त मज़दूर आन्दोलन का उभार हुआ। आर्थिक मन्दी के कारण भारत में महँगाई आसमान छूने लगी और ब्रिटिश सरकार के करों के कारण जनता के व्यापक हिस्से में इसके ख़िलाफ़ गुस्सा था। शोलापुर में टेक्स्टाइल की हड़ताल हुई जहाँ मज़दूरों का शोलापुर कम्यून उभरकर आया। लगभग हर औद्योगिक केन्द्र में मज़दूरों का भयंकर आन्दोलन हुआ। गाँधी ने वक़्त की नब्ज़ पकड़ते हुए नमक सत्याग्रह शुरू किया जिसने आर्थिक मन्दी के कारण बढ़ती महँगाई से तंग जनता को सड़कों पर उतार दिया।

इस आर्थिक मन्दी के साये में जीते वक़्त हमें इतिहास के इन सबकों को ध्यान में रखना होगा। शासक वर्गों ने एक बार फिर फासीवाद का विकल्प चुना है। न सिर्फ़ भारत में बल्कि दुनिया के तमाम देशों में दक्षिणपन्थी फासीवादी ताक़तों का उभार हो रहा है। अमेरिका में वैसे तो डेमोक्रेट और रिपब्लिकन पार्टियों में बड़ा अन्तर नहीं है लेकिन रिपब्लिकन पार्टी की ओर से आगामी राष्ट्रपति चुनाव का संभावित प्रत्याशी डोनाल्ड ट्रम्प निश्चित ही फासीवादी रुख़ रखता है। ब्रिटेन, इटली से लेकर तमाम देशों में श्रम सुधारों के नाम पर मज़दूरों के लिए बने क़ानूनों को ख़त्म किया जा रहा है। वे अपना विकल्प चुन रहे हैं तो हमें भी अपना विकल्प चुनना होगा और मज़दूर क्रान्ति की तैयारियों को तेज़ करना होगा क्योंकि सिर्फ़ यही मज़दूरों की मुक्ति का रास्ता है। 2008 की मन्दी की शुरुआत से ही दुनियाभर में ज़बरदस्त जन आन्दोलन खड़े हुए हैं परन्तु उन्हें समाजवाद से जोड़ने का काम करना आज मज़दूरों के हिरावल हिस्से का सबसे पहला काम है।

फासीवाद की काली घटाओं को चीरकर आगे बढ़ने का संकल्प लेना ही होगा!

(पेज 8 से आगे)

समझना होगा और अभी से उनके विरोध की रणनीति बनानी होगी। मज़दूरों की वर्गीय एकता को तोड़ने के लिए भगवा फ़ासिस्टों की पूरी कोशिश रहेगी कि लोगों का साम्प्रदायिक मुद्दों के आधार पर ध्रुवीकरण किया जाये। साल की शुरुआत में ही जिस तरीक़े से भगवा लंगूरों ने रामजन्मभूमि का मुद्दा फिर से उछाला है उससे हमें इस बात के पूरे संकेत भी मिलने लगे हैं। यह भी तय है कि शिक्षा जगत और अकादमिक जगत को भगवा रंग में रँगने की संघी मुहिम भी पूरे देश में ज़ोर-शोर से आगे बढ़ायी जायेगी। इंसाफ़, बराबरी और सामाजिक समरसता की बात करने वाली हर आवाज़ को बर्बरता से कुचलने की मुहिम भी आगे बढ़ायी जा रही है।

इतिहास गवाह रहा है कि पूँजीवादी संकट के दौर में फलने-फूलने वाले फ़ासीवादी दानवों का मुक़ाबला मज़दूर वर्ग की फौलादी एकजुटता से ही किया जा सकता है। हमें यह समझना ही होगा कि भगवा फ़ासीवादी शक्तियाँ मेहनतकशों को धर्म और जाति के नाम पर बाँटकर मौत का जो ताण्डव रच रही हैं उससे वे अपने मरणासन्न स्वामी यानी पूँजीपति वर्ग की उम्र बढ़ाने का काम कर रही हैं। मज़दूर वर्ग को पूँजीवाद के इस मरणासन्न रोगी को उसकी क़ब्र तक पहुँचाने के अपने ऐतिहासिक मिशन को याद करते हुए फ़ासिस्ट ताक़तों से लोहा लेने के लिए कमर कसनी ही होगी। नये साल में इससे बेहतर संकल्प भला क्या हो सकता है!

नये साल पर मज़दूर साथियों के नाम 'मज़दूर बिगुल' का सन्देश

नये वर्ष पर नहीं है हमारे पास आपको देने के लिए
सुन्दर शब्दों में कोई भावविह्वल सन्देश
नये वर्ष पर हम सिर्फ़ आपकी आँखों के सामने
खड़ा करना चाहते हैं
कुछ जलते-चुभते प्रश्नचिह्न
उन सवालों को सोचने के लिए लाना चाहते हैं
आपके सामने
जिनकी ओर पीठ करके आप खड़े हैं।
देखिये! अपने चारों ओर बर्बरता का यह नग्न नृत्य
जड़ता की ताक़त से आपके सीने पर लदी हुई
एक जघन्य मानवद्रोही व्यवस्था
देखिये! अपने आस-पास की इस दुनिया को
जहाँ सामूहिक बलात्कार के शिकार
युवा स्वप्न पड़े हैं सरेआम सड़क पर लथपथ
क्या सचमुच हम बगल से होकर
चुपचाप गुज़र सकते हैं?
लांछित और कलंकित किया जा रहा है
हमारे अतीत के गौरवशाली संघर्षों और कुर्बानियों को
और सनक और बेवकूफ़ी बताया जा रहा है
मुक्ति के हमारे सपनों को
भविष्य की हमारी परियोजनाओं को हवाई मंसूबा
बताया जा रहा है
विद्वानों की सैद्धान्तिक उल्टियों से सड़क-चौराहे
बदबू कर रहे हैं
क्या ये सारी स्थितियाँ आपको
सचमुच काबिले-बर्दाश्त लगती हैं?
कृत्या राक्षसी की तरह हू-हू करती
पूँजी भाग रही है भूमण्डल पर चारों ओर
उठ रहे हैं और लड़ रहे हैं यहाँ-वहाँ
हमारे आपके साथी और भाई-बहन
और एक स्पष्ट दिशा और अपने जैसों के साथ के अभाव में
टूट जा रही हैं और बिखर जा रही हैं उनकी लड़ाइयाँ
क्या सचमुच हम और आप ऐसी लोहे की दीवारों के बीच
क़ैद हो गये हैं जहाँ कोई भी पुकार हमें सुनाई नहीं देती?
नये साल पर हम सिर्फ़ आपसे यही पूछना चाहते हैं
हम आपको एक लम्बी, सुदूर, बीहड़ यात्रा पर
फिर से चल पड़ने के लिए
तैयार हो जाने का न्यौता दे रहे हैं।
हम आपसे फिर उठ खड़े होने के लिए कह रहे हैं
यह दुनिया यूँ ही रेंगती हुई ख़त्म नहीं होने वाली है
और पूँजी को दफ़्न करने का इतिहास का जो हुक्म है
उसकी तामील आप ही को करनी है
चाहे आप जितनी भी देर करें
आप अपने इस ऐतिहासिक दायित्व से
मुँह नहीं चुरा सकते।
नये साल पर कहने के लिए हमारे पास
बस यही कुछ असुविधजनक और चिन्ता
और चुनौतियों से भरी हुई बातें हैं
अगर आप सुन पायें तो इन पर सोचियेगा ज़रूर!

(मज़दूर बिगुल, जनवरी 2013 से पुन: प्रकाशित)

महीनों से आर्थिक नाकाबन्दी की मार झेलते नेपाल के लोग

अप्रैल और मई 2015 में आये भूचाल से अभी नेपाल के लोग उबरे भी नहीं थे कि पिछले पाँच महीनों से उन्हें आर्थिक नाकाबन्दी का दंश झेलने को मजबूर हैं। इस नाकेबन्दी का कारण नेपाल के भारत के साथ सटे दक्षिण-पूर्वी तराई क्षेत्र में रह रहे मधेसी लोगों की ओर से किये जा रहे प्रदर्शन हैं जिनको भारत सरकार की सहमति भी हासिल है। इस नाकेबन्दी के कारण नेपाल में ज़रूरी वस्तुओं की भारी किल्लत हो गयी है। हालात इतने गम्भीर हो चुके हैं कि यूनिसेफ़ को घोषणा करनी पड़ी है कि यदि आने वाले महीनों में इसका कोई हल न निकाला गया तो **पाँच साल से कम उम्र के 30 लाख बच्चे मौत या फिर भयंकर बीमारी के दहाने में पहुँच जायेंगे।**

इस मसले की शुरुआत नेपाल की अलग-अलग पार्टियों की ओर से 20 सितम्बर, 2015 को अपनाये गये नये संविधान के बाद से हुई है। नेपाल की भारत के साथ सटी सीमा पर रह रहे मधेसी लोगों की नुमाइन्दगी कर रही पार्टियों का कहना है कि यह संविधान मधेसी लोगों के साथ लम्बे समय से हो रहे भेदभाव को वैध बनाता है। उनका आरोप है कि यह संविधान मधेसी लोगों को पूरे अधिकारों की गारण्टी नहीं करता और नेपाल के 7 में से 6 राज्यों को इस तरह से बाँटा गया है कि चुनावों के समय मधेसियों को उनकी आबादी के हिसाब से उतना प्रतिनिधित्व नहीं मिलता। मधेसी आबादी नेपाल की कुल आबादी का करीब 33% बनती है लेकिन सरकार, पुलिस और फ़ौज में इसका हिस्सा केवल 12% है। यही वह कारण है जिनको लेकर 'सयुंक्त लोकतान्त्रिक मधेसी मोर्चा' के नाम तले वहाँ के लोगों ने भारत से व्यापार का महत्त्वपूर्ण मार्ग - रक्सौल बीरगंज मार्ग - बन्द कर दिया है। इस तनाव में हुई पुलिस और लोगों की झड़पों में अभी तक तकरीबन 50 लोगों की मौत हो चुकी है।

नेपाल की राजनीतिक पार्टियाँ, मीडिया और लोग भी इस नाकाबन्दी के लिए भारत सरकार को दोषी ठहरा रहे हैं। काठमाण्डू में इस नाकेबन्दी के ख़िलाफ़ कई प्रदर्शन हो चुके हैं। नेपाल के नये चुने गये प्रधानमन्त्री के.पी. शर्मा ओली ने कहा कि भारत की ओर से नेपाल की की गयी यह नाकाबन्दी "युद्ध से भी बढ़कर अमानवीय" कार्रवाई है। भारतीय सरकार की ओर से भले ही इस तरह के आरोपों को रद्द किया जा रहा है, लेकिन यह सच्चाई है कि पिछले लम्बे समय से नेपाल में संविधान बनाने की चल रही प्रक्रिया में भारत की ओर से लगातार दख़लन्दाज़ी की जाती रही है। जब पिछले साल संविधान को बनाने की प्रक्रिया चल रही थी, तब से ही भारतीय हुक्मरानों ने नेपाल में मौजूद राजाशाही के अवशेषों, नेपाली स्वयं सेवक संघ और नेपाली हिन्दू सभा जैसे धुर-दक्षिणपन्थी संगठनों के साथ मिलकर इस प्रक्रिया को अपने हितों के अनुकूल करने के लिए रैलियाँ भी निकाली थीं। जिस दिन से यह नाकाबन्दी शुरू हुई, उसी दिन अख़बार 'इण्डियन एक्सप्रेस' ने ख़बर शाया की थी कि भारतीय सरकार ने नेपाल से संविधान में कुछ विशेष संशोधन करने की बात कही है। सुषमा स्वराज ने 7 दिसम्बर को बयान दिया था कि, "यदि भगवान ने चाहा और मधेसियों को इन्साफ़ मिला" तो नेपाल में आने वाले दिनों में हालात ठीक हो जायेंगे। इससे पहले स्वराज की ओर से यह भी कहा गया था कि नेपाल के साथ व्यापार के लिए इस्तेमाल किये जा रहे दूसरे मार्गों के ज़रिये ज़रूरी वस्तुओं की सप्लाई की जायेगी। लेकिन अभी तक भारत सरकार ने इस पर कोई अमल नहीं किया है। इसीलिए यह कहने का ठोस आधार है कि भारतीय सरकार की इस आर्थिक नाकाबन्दी में भूमिका है।

भारत के साथ नेपाल की 1800 किलोमीटर लम्बी सीमा है और तकरीबन 27 व्यापारिक मार्ग हैं। यदि भारतीय हुक्मरानों को 'इन्साफ़' की इतनी ही फ़िक्र है तो वह ज़रूरी वस्तुओं की सप्लाई इन मार्गों के ज़रिये भी कर सकता है क्योंकि इनमें से ज़्यादातर मार्गों के ऊपर कोई प्रदर्शन नहीं चल रहे हैं। वैसे यह कोई पहली बार नहीं है कि भारतीय सरकार ने नेपाल की इस तरीक़े से आर्थिक नाकाबन्दी की हो। इससे पहले राजीव गाँधी सरकार के समय भी 23 मार्च 1989 से लेकर अप्रैल 1990 तक 13 महीनों के लिए नेपाल की इस तरीक़े से घेराबन्दी की गयी थी। उस समय मूल कारण नेपाल की ओर से चीन के साथ किये गये कुछ आर्थिक समझौते थे जिसके तहत चीन ने तिब्बत के रास्ते होते हुए नेपाल की ओर सड़कों का निर्माण करना था। चीन के साथ नेपाल के बढ़ते इन सम्बन्धों के चलते व अपने हितों को हो रहे नुक़सान के चलते भारत सरकार ने तमाम अन्तरराष्ट्रीय क़ानूनों (जिसके तहत यदि किसी भूमध्यस्थ देश को अपने विदेशी व्यापार के लिए करीबी बन्दरगाहों तक पहुँचना हो तो वह अपने पड़ोसी मुल्कों के रास्ते का इस्तेमाल कर सकता है) का उल्लंघन करते हुए नेपाल के ऊपर यह आर्थिक आतंकवाद लाद दिया गया जिसके बाद नेपाल के राजा बीरेन्दर को अपनी माँगों से पीछे हटना पड़ा था और भारतीय समर्थन हासिल 'नेपाली कांग्रेस पार्टी' को रियायतें देनी पड़ी थीं। मौजूदा भाजपा सरकार की भी शुरू ही से नेपाल पर गिद्ध-नज़र रही है। प्रधानमन्त्री बनने के बाद मोदी की ओर से किया गया नेपाल का दौरा किसी भारतीय प्रधानमन्त्री की ओर से 17 साल बाद किया गया दौरा था। रणनीतिक दृष्टि से यह क्षेत्र बेहद अहम है और भारतीय हुक्मरान नहीं चाहते कि इस क्षेत्र में चीन का प्रभाव बढ़े। साल 2013 में चीन भारत को पीछे छोड़ नेपाल में सबसे बड़ा निवेशक बन गया था और अब भी वह नेपाल के साथ लगातार ऊर्जा के क्षेत्र में समझौते कर रहा है। जब से यह नाकेबन्दी शुरू हुई है तब से चीन नेपाल की ओर तेल और अन्य ज़रूरी वस्तुओं की सप्लाई करने के लिए समझौते कर रहा है ताकि नेपाल के ऊपर भारतीय इज़ारेदारी को ख़त्म किया जा सके।

दिसम्बर के आख़िरी सप्ताह में नेपाली नेतृत्व की बीजिंग यात्रा के दौरान दोनों देशों के दरमियान दीर्घकालिक अवधि के लिए तेल सप्लाई के समझौतों पर भी सहमति जतायी गयी। समझौते से पहले 'नेपाल तेल कार्पोरेशन' के प्रवक्ता दीपक बराल का कहना था कि "भारत तेल की ज़रूरी सप्लाई नहीं कर रहा, इसीलिए हमारे पास अपने दूसरे पड़ोसी चीन के साथ समझौता किये बिना और कोई रास्ता नहीं है।" चीन की ओर से पिछले कुछ समय से नेपाल के साथ किये जा रहे इन समझौतों के कारण भारतीय हुक्मरान परेशान हैं। साथ ही, नेपाल की ओर से पारित किये गये नये संविधान में नेपाल को 'हिन्दू राष्ट्र' घोषित ना किया जाना भी कहीं न कहीं आरएसएस को चुभ रहा है। इन्हीं कारणों के चलते भारत की ओर से नेपाल के मधेसी लोगों के प्रदर्शनों को अपने हितों के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है।

नेपाल अपनी बुनियादी ज़रूरतों का 60% भारत से आयात करता है। इस समय सभी आयात रुके होने की वजह से नेपाल में तेल, गैस, दवाइयों आदि बुनियादी ज़रूरतों की भारी किल्लत हो गयी है। इस नाकेबन्दी के चलते ट्रांसपोर्ट भी प्रभावित हुआ है, लोग ईंधन के लिए लकड़ी का इस्तेमाल कर रहे हैं, ज़रूरी वस्तुओं की क़ीमतें कई गुना बढ़ गयी हैं, नेपाल की आर्थिक वृद्धि दर तकरीबन 2% सिकुड़ गयी है और नेपाल के प्रमुख अस्पतालों में दवाइयाँ ख़त्म हो रही हैं व ज़रूरी टेस्ट और ऑपरेशन भी आगे डाले जा रहे हैं। नेपाल मेडिकल संघ के डा. मुक्ति राम श्रेष्ठ ने बताया कि अस्पताल सर्जरियों को कई-कई हफ़्ते आगे तक टाल रहे हैं और मरीज़ों को दवाई हासिल करने में बेहद कठिनाई हो रही है। उन्होंने कहा, "यदि यह समस्या जारी रहती है तो मरीज़ अगले दो हफ़्तों तक मरने शुरू हो सकते हैं।" साथ ही उन्होंने जोड़ा कि भारतीय सरकार उन मार्गों से भी माल की सप्लाई नहीं कर रही जहाँ कोई प्रदर्शन नहीं हो रहे।

इस तरह हम देख सकते हैं कि किस तरह भारतीय हुक्मरान नेपाल के अन्दरूनी मामलों में दख़लन्दाज़ी कर रहे हैं और इसके चलते इस छोटे से पड़ोसी देश के लोगों को भारी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। नेपाल के अन्दरूनी मामलों में भारत की बढ़ती यह दख़लन्दाज़ी, वैश्विक स्तर पर तीखे हो रहे उन्हीं भू-राजनीतिक तनावों का उदाहरण है जिनके चलते आज मज़दूर वर्ग के सामने युद्ध एक वास्तविक चुनौती बनकर उभर रहा है।

- मानव

मार्क्स की 'पूँजी'...

3

(पेज 11 से आगे)

पूँजीवादी समाज के आर्थिक ढाँचे की उत्पत्ति सामंती समाज के आर्थिक ढाँचे से हुई। सामंती समाज का छिन्न-भिन्न होना पूँजीवादी समाज के निर्माण के तत्वों को उन्मुक्त करता है।

प्रत्यक्ष उत्पादक, यानी मज़दूर, तब तक अपने श्रम को बेच नहीं सकता था जब तक कि ज़मीन से उसका जुड़ाव समाप्त नहीं हुआ होगा, जब तक कि उसे दास, भूदास अथवा किसी अन्य व्यक्ति का बंधुआ मज़दूर होने से छुटकारा नहीं मिला होगा। इसके अतिरिक्त श्रमशक्ति का स्वतंत्र विक्रेता बनने के लिए, किसी भी बाज़ार में सौदा करने के लिए, उसे शिल्प संघों के प्रभुत्व से बचना, उन शिल्प संघों के नियमों और क़ायदों से मुक्ति पाना आवश्यक था जो अपने एप्रेंटिसों और जर्नीमैनों की क्रियात्मक गतिविधि पर पाबंदी लगाते थे। इस दृष्टिकोण से वह ऐतिहासिक प्रक्रिया जो उत्पादकों को उजरती मज़दूरों में तब्दील कर देती है, एक ओर इन उत्पादकों को भूदास-प्रथा से तथा शिल्प संघों की पाबंदियों से आज़ाद कराने की प्रक्रिया होती है। बुर्जुआ इतिहासकारों के लिए केवल यही पहलू मौजूद होता है। लेकिन दूसरी ओर, नयी-नयी स्वतंत्रता हासिल किये हुए लोग तब तक बाज़ार में ख़ुद को बेचने नहीं आते जब तक कि उनसे उत्पादन के सभी साधन और अस्तित्व बचाने की उन सभी चीज़ों को छीन नहीं लिया जाता जो पुरानी सामंती संस्थाएँ उन्हें प्रदान करती थीं। इस संपत्तिहरण की कहानी मनुष्यजाति के इतिहास में रक्तरंजित एवं आग्नेय अक्षरों में लिखी हुई है।...

उजरती मज़दूर और पूँजीपति दोनों को पैदा करने वाली विकास प्रक्रिया का प्रस्थान-बिन्दु मज़दूर की गुलामी थी; प्रगति इस गुलामी के स्वरूप बदलने में थी, सामंती शोषण के पूँजीवादी शोषण में रूपांतरित होने में थी।...

आदिम संचय के इतिहास में ऐसी तमाम क्रान्तियों को हमें युगांतरकारी मानना चाहिए जो निर्माण के दौर से गुजर रहे पूँजीपति वर्ग के लिए पहले सोपानों का काम करती हैं। सबसे अधिक यह बात उन क्षणों के लिए लागू होती है, जब बड़ी संख्या में मनुष्यों के समूहों को यकायक और जबरन उनके जीवन-निर्वाह के साधनों से अलग करके स्वतंत्र एवं ''अनाश्रित'' सर्वहारा के रूप में श्रम की मंडी में फेंक दिया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया का आधार है खेतिहर उत्पादों, किसानों, का संपत्तिहरण, उनको उनकी ज़मीन से अलग किया जाना।

अलग-अलग देशों में यह संपत्तिहरण अलग-अलग रूप धारण करता है, विभिन्न ऐतिहासिक कालखण्डों में उत्तरजीविता के विभिन्न क्रम में अपनी अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरता है। किंतु सिर्फ़ इंग्लैण्ड में ही यह कहा जा सकता है कि उसका प्रारूपित रूप देखने को मिलता है, इसी वजह से हम अपने उदाहरण के लिए इंग्लैण्ड को ले रहे हैं।

(अगले अंक में जारी)

मार्क्स की 'पूँजी' को जानिये : चित्रांकनों के साथ

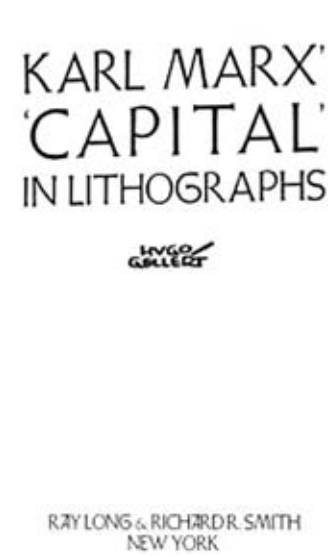

अमेरिका की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य एवं प्रसिद्ध राजनीतिक चित्रकार ह्यूगो गेलर्ट ने 1934 में मार्क्स की 'पूँजी' के आधार पर एक पुस्तक 'कार्ल मार्क्सेज़ कैपिटल इन लिथोग्राफ़्स' लिखी थी जिसमें 'पूँजी' में दी गयी प्रमुख अवधारणाओं को चित्रों के ज़रिये समझाया गया था। गेलर्ट के ही शब्दों में इस पुस्तक में ''...मूल पाठ के सबसे महत्वपूर्ण अंश ही दिये गये हैं। लेकिन मार्क्सवाद की बुनियादी समझ के लिए आवश्यक सामग्री चित्रांकनों की मदद से डाली गयी है।'' 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों के लिए इस शानदार कृति के अंशों को इस अंक से एक श्रृंखला के रूप में दिया जा रहा है। — सम्पादक

पूँजी संचय का रहस्य

1

....राजनीतिक शास्त्र में.... आदिम संचय कमोबेश वही भूमिका अदा करता है जो भूमिका धर्मशास्त्र में मूल पाप अदा करता है। इस दुनिया में पाप इसलिए आया क्योंकि आदम ने वर्जित सेब को खा लिया था। मूल पाप का उद्भव एक लोक कथा के ज़रिये बताया जाता है। उसी तरह से, आदिम संचय के बारे में भी हमें बताया जाता है कि बहुत समय पहले दुनिया में दो तरह के लोग थे। एक ओर कुछ श्रेष्ठ लोग थे, जो परिश्रमी थे, बुद्धिमान थे, और सबसे बड़ी बात यह कि वे किफ़ायती थे; दूसरी ओर काहिल और बदमाश थे, जो अपनी पूरी धन-संपत्ति भोग-विलास में लुटाते थे। लेकिन एक अन्तर है। पतन की धर्मशास्त्रीय कथा हमें कम से कम यह बताती है कि इंसान को अपनी रोजी-रोटी के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक क्यों करना पड़ता है। वहीं दूसरी ओर आर्थिक इतिहास में पतन की कथा हमें यह बताती है कि ऐसा क्यों है कि कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनको रोजी-रोटी के लिए ऐसा कुछ भी नहीं करना पड़ता। जो भी हो! यह आर्थिक पतन ही आम लोगों के ग़रीबी की वजह है जो कितनी भी कड़ी मेहनत कर लें, हर हमेशा उनके पास बेचने के लिए खुद के सिवा कुछ भी नहीं रहता; और उसी तरह से कुछ लोगों की संपदा की शुरुआत भी वहीं से होती है, जो लगातार बढ़ती जा रही है, हालाँकि उन लोगों ने काम करना कब का छोड़ दिया है।

अभी भी लोग इस तरह की बचकानी बकवास करते हैं... जैसे ही कहीं पर संपत्तिका सवाल उठता है, वैसे ही यह घोषणा करना हरेक आदमी का पुनीत कर्तव्य बन जाता है कि हर आयु और मानसिक विकास की प्रत्येक अवस्था में लोगों को बस अक्षरमाला ही पढ़ायी जानी चाहिए। जैसाकि सभी जानते हैं, वास्तविक जगत के इतिहास में मुख्य भूमिका युद्धों, दूसरों को अधीन करने, डाकेजनी, हत्या, और संक्षेप में कहें तो बलप्रयोग की होती है। लेकिन राजनीतिक अर्थशास्त्र का सभ्य इतिहास हमेशा से ही मनोहर कहानियों से चिपका रहा है। अर्थशास्त्रियों की मानें तो ''हमारे दौर को छोड़ दिया जाय तो अधिकार और श्रम हमेशा से समृद्धि का एकमात्र ज़रिया रहा है।'' लेकिन सच तो यह है कि आदिम संचय जिन तरीक़ों से हुआ है, वे और कुछ भी हों, मनोरम तो हरगिज़ न थे।

2

जिस तरह उत्पादन के साधन तथा जीवन-निर्वाह के साधन पहले से ही पूँजी नहीं होते, उसी तरह मुद्रा और माल भी पहले से ही पूँजी नहीं होते। उनको पूँजी में रूपांतरित करना पड़ता है। परन्तु यह रूपांतरण कुछ निश्चित परिस्थितियों में ही हो सकता है जिनमें से निम्नलिखित अनिवार्य हैं। दो बहुत भिन्न प्रकार के मालों के मालिकों का आमना-सामना होना चाहिए और उनको एक पारस्परिक सम्बन्ध में बंधना चाहिए। एक तरफ़ होने चाहिए मुद्रा, उत्पादन के साधनों और जीवन-निर्वाह के साधनों के मालिक, जो दूसरों की श्रम शक्ति को ख़रीदकर अपने मालिकाने के मूल्यों की कुल राशि को बढ़ाने की लालसा रखते हों। दूसरी तरफ़ होने चाहिए स्वतंत्र मज़दूर, अपनी श्रम-शक्ति बेचने वाले और इसलिए श्रम बेचने वाले। उन्हें दोहरे अर्थ में ''स्वतंत्र'' होना चाहिए। पहले तो उन्हें स्वयं दासों, भूदासों, आदि की भांति ख़ुद उत्पादन के साधनों का प्रत्यक्ष हिस्सा नहीं होना चाहिए और उन्हें उत्पादन के साधनों से जुड़ा हुआ नहीं होना चाहिए। दूसरे, जिस तरह मालिक किसान के पास उत्पादन के साधन होते हैं उस तरह से उनके पास उत्पादन के साधन नहीं होने चाहिए। स्वतंत्र मज़दूर स्वयं के किसी भी उत्पादन के साधनों से स्वतंत्र और उसके बोझ से मुक्त होते हैं।

मालों की मंडी के इस प्रकार के ध्रुवीकृत हो जाने पर पूँजीवादी उत्पादन के लिए आवश्यक मूलभूत शर्तें पूरी होती हैं। पूँजीवादी व्यवस्था मज़दूरों और उस संपत्तिके बीच एक अलगाव को पहले से मानकर चलती है जिसके ज़रिये ही उनका श्रम मूर्त रूप ग्रहण कर सकता है। जैसे ही पूँजीवादी उत्पादन अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है, वह इस अलगाव को महज़ अतीत की विरासत के रूप में नहीं प्राप्त करता है, बल्कि वह लगातार बढ़ते हुए पैमाने पर उसका पुनरुत्पादन करता है। इसलिए पूँजीवादी व्यवस्था के वास्ते रास्ता तैयार करने वाली प्रक्रिया और कुछ नहीं बल्कि वह प्रक्रिया है जिसमें मज़दूर से उसके श्रम के साधनों का स्वामित्व छीन लिया जाता है; एक ऐसी प्रक्रिया जो एक ओर उसके जीवन-निर्वाह और उत्पादन के साधनों को पूँजी में और दूसरी ओर, प्रत्यक्ष उत्पादकों को उजरती मज़दूर में तब्दील कर देती है।

अत: तथाकथित आदिम संचय और कुछ नहीं बल्कि वह ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसे द्वारा उत्पादक का उत्पादन के साधनों से अलगाव होता है।

यह ''आदिम'' स्वरूप इसलिए ग्रहण करती है क्योंकि यह उस प्रारंभिक दौर से जुड़ी है जो पूँजीवाद के इतिहास की शुरुआत और पूँजीवाद के अनुरूप उत्पादन की पद्धति के स्थापित होने से ठीक पहले आता है।

(पेज 10 पर जारी)

जलवायु संकट पर आयोजित पेरिस सम्मेलन : फिर खोखली बातें और दावे

अन्धाधुन्ध पूँजीवादी विकास से धरती की तबाही को रोकने के लिए कोई ठोस क़दम नहीं

जलवायु संकट पैदा करनेवाले सबसे अधिक ज़िम्मेदार देशों ने पेरिस सम्मेलन में लोगों को भरमाने के लिए एक बार फिर लच्छेदार शब्दावलियों का प्रयोग किया। जिसमें सबसे ज़्यादा चर्चित रहा 'जलवायु न्याय' का शगूफा। हर साल होनेवाले ऐसे असफल तमाशों के नतीजों को देखते हुए इस बार पेरिस में कुछ सार्थक और फलदायी होने का भ्रम पैदा करना ज़रूरी था। 12-13 दिनों तक चलनेवाले इस 21वें सम्मेलन में पूँजी और मुनाफ़े के खेल में ताक़तवर हैसियत रखनेवाले देश यह जानते थे कि इस बार का नतीजा भी शून्य ही होगा लेकिन अपने-अपने देशों और दुनियाभर की मेहनतकश जनता को यह दिखाना भी होता है कि धरती के बढ़ते तापमान के संकट से होनेवाले नुक़सान को लेकर वे कितने चिन्तित रहते हैं। इसलिए इस मामले में सबका सरगना अमेरिका ने कई माह पूर्व से अपनी तैयारी शुरू कर दी थी। घरेलू मोर्चे पर अमेरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने पेरिस सम्मेलन के काफ़ी पहले ही यह ज़ोर-शोर से ऐलान कर दिया था कि उनकी सरकार धरती का तापमान बढ़ाने में मुख्य रूप से ज़िम्मेदार कार्बन उत्सर्जन को 2030 तक 32 प्रतिशत की कटौती करने का संकल्प लेती है। इसके लिए ऐसे नियम बनाये गये हैं जिसके तहत या तो कोयले से चलनेवाले बिजली प्लाण्ट बन्द कर दिये जायेंगे या कोयला आधारित बिजली स्टेशनों की क्षमता में सुधार किया जायेगा और जीवाश्म ईंधन (तेल, कोयला और प्राकृतिक गैस) से इतर ईंधनों को बढ़ावा दिया जायेगा। इसके साथ ही अमेरिका ने जलवायु संकट पर अपनी चिन्ता और सरोकार का दिखावा करते हुए और पेरिस सम्मेलन में अपने हित के अनुरूप होनेवाले समझौते से अन्य देशों को सहमत करने के इरादे से उसने लगातार उनके साथ द्विपक्षीय वार्ताएँ भी आयोजित कीं। इससे ओबामा देश के भीतर और बाहर यह भ्रम पैदा करने की कोशिश करते रहे कि उनकी सरकार जलवायु परिवर्तन के सवाल पर कितनी गम्भीर है और किस प्रकार अमेरिका अन्य देशों के सामने एक उदाहरण पेश कर रहा है। लेकिन हक़ीक़त इससे कोसों दूर है।

पहले यह देखना होगा कि ग्रीन हाउस गैसें, जो मुख्यतः कार्बन डाइ आक्साइड, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड और फ्लूरोकार्बन जैसी नुक़सानदायी गैसों से मिलकर बनी होती हैं, किस प्रकार इस ख़तरनाक हद तक बढ़ीं कि इसने पृथ्वी का तापमान बढ़ाकर पूरे भूमण्डल और मनुष्य जाति के लिए ख़तरा पैदा कर दिया। पूँजीवादी होड़ और मुनाफ़े की अन्धी हवस में कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस का अन्धाधुन्ध दोहन हुआ। यह जीवाश्म ईंधन किसी भी प्रकार के अन्य ईंधन से सस्ता और सर्वसुलभ था इसलिए कोयला और पेट्रोल उत्पाद का कच्चे माल के रूप में बिजली पैदा करने और परोक्ष रूप से सीमेन्ट, लोहा व इस्पात और रसायन के उद्योगों में बेरोकटोक इस्तेमाल किया गया और मुनाफ़े से शासक वर्ग ने अपनी तिजोरियाँ भरीं। अमेरिका में अकेले कोयला आधारित बिजली उत्पादन में कार्बन उत्सर्जन की मात्रा दुनियाभर में दूसरे नम्बर पर है। इसके साथ ही परिवहन उद्योग भी कार्बन उत्सर्जन का एक बड़ा कारण बना रहेगा, क्योंकि पूँजीवादी निजी उपभोग की व्यवस्था परिवहन का कोई उपयुक्त सार्वजनिक तन्त्र विकसित ही नहीं होने देगी। लिहाज़ा सड़क पर दौड़ती निजी गाड़ियाँ पेट्रोल की खपत को बढ़ाती ही जायेंगी। और कार्बन आदि गैस के उत्सर्जन में कटौती की गुंजाइश ही ख़त्म कर देंगी। साथ ही, जो जंगल और वन कार्बन उत्सर्जन को सोख कर जलवायु में सन्तुलन बनाये रखते थे पूँजीवाद मुनाफ़े की लालच में उन्हें भी काटकर वहाँ आमोद-प्रमोद के भवनों और अट्टालिकाओं का निर्माण करता जा रहा है। निजी मुनाफ़े की भूख दुनिया या समाज के हित की बात नहीं सोच सकता चाहे इसके लिए कितनी भी चिन्ता या कवायद क्यों न कर ली जाये।

जलवायु संकट पर 1992 में संयुक्त राष्ट्र की पहली वैश्विक सन्धि में धरती के अत्यधिक गर्म होने पर ऐसी ही चिन्ता प्रकट की गयी थी और यह घोषित किया गया था कि धरती को अत्यधिक गर्म होने से बचाना होगा जिसकी ज़िम्मेदारी सबकी है, लेकिन उन देशों की ज़्यादा है जिन्होंने ऐतिहासिक रूप से कार्बन का उत्सर्जन ज़्यादा किया। इसी सोच पर आधारित क्योटो प्रोटोकाल अस्तित्व में आया, लेकिन 1997 से लेकर 2012 के अपने समाप्ति साल तक ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन में कटौती का कोई ठोस प्रस्ताव या कोई ठोस योजना सामने नहीं आयी और इसका कार्यकाल बेनतीजा ही समाप्त हो गया। यूँ तो पहली सन्धि के बाद से ही दो दशकों से भी अधिक समय से हर साल जलवायु परिवर्तन और भूमण्डल के लगातार बढ़ते तापमान को लेकर सम्मेलन आयोजित होते रहे हैं, हानिकारक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने की शपथ ली जाती रही हैं, जीवाश्म ईंधन का कोई अन्य विकल्प दिये बिना इसका उपयोग कम करने की प्रतिबद्धता जतायी जाती रही है। लेकिन उत्सर्जन में कमी लाना तो दूर रहा, इसे स्थिर भी नहीं रखा जा सका। उल्टे, इस दौरान अब तक कार्बन उत्सर्जन में 60 प्रतिशत का इज़ाफ़ा हो चुका है। 2030 तक यह और 10 प्रतिशत बढ़ जायेगा। 2009 के 15वें कोपेनहेगन सम्मेलन में ही यह साफ़ हो चुका था कि ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में कमी का ग्राफ़ नीचे की ओर जा रहा है। सभी देशों ने मंच से बड़ी-बड़ी बातें कीं, लेकिन किसी देश ने अपने हिस्से के अनुरूप उत्सर्जन कटौती की ज़िम्मेदारी नहीं उठायी और महज़ खानापूर्ति करते हुए बच निकले क्योंकि उन्होंने वह ज़िम्मेदारी भी पूरी नहीं की, जिसका उन्होंने वायदा किया था। खुद अमेरिका ने 1990 को आधार वर्ष मानते हुए केवल 12-13 प्रतिशत उत्सर्जन कम करने का वायदा किया जो शर्मनाक रूप से पहले ही काफ़ी कम है। उसे भी वह पूरा नहीं कर सका। आस्ट्रेलिया, जापान, कनाडा आदि देशों की कमोबेश यही स्थिति है। यूरोपीय संघ ने 40 प्रतिशत कटौती का वायदा किया लेकिन यह भी उसके कुल उत्सर्जन की मात्रा के लिहाज़ से बेहद कम है। यह ठोस वास्तविकता है कि किसी भी देश ने अपना वायदा पूरा नहीं किया है। कोपेनहेगेन के बाद डरबन और पेरू की राजधानी लीमा के सम्मेलन में फिर वही शेखचिल्ली जैसी बातें हुईं कि हम सबको जलवायु संकट का मिलकर मुकाबला करना होगा, तापमान वृद्धि को 2 डिग्री सेल्सियस की सीमा में रखना होगा और साझी कार्ययोजना लेनी होगी, वग़ैरह वग़ैरह। ज़ाहिर है उसका कोई नतीजा न निकलना था और न ही निकला।

बड़े ही गाजे-बाजे के साथ पेरिस के शिखर सम्मेलन की शुरुआत हुई लेकिन उसमें हुआ क्या? भूमण्डलीय तापमान को सीमित रखने का वैसा ही महत्वाकांक्षी लक्ष्य! इसे हासिल करने के वैसे ही लम्बे-चौड़े वायदे! जहाँ तक ठोस प्रस्तावों की बात है उसकी कोई चर्चा नहीं की गयी, इस उम्मीद के साथ कि इस पर किसी का ध्यान नहीं जायेगा। लेकिन अब आम लोग भी इस चालाकी को समझने लगे हैं। ऐन पेरिस सम्मेलन के पहले इसके विरोध में दुनियाभर के पर्यावरण कार्यकर्ता सड़कों पर उतर आये। पेरिस समेत 175 देशों में 60000 से अधिक लोगों द्वारा विरोध प्रदर्शन आयोजित किये गये। साफ़ है जलवायु संकट से निपटने के नाम पर ऐसे सम्मेलनों की निरर्थकता बिल्कुल सामने आ चुकी है। इस सम्मेलन में भी दिखावे के लिए ही सही कुछ तो करना ही था। लिहाज़ा तापमान वृद्धि 2 डिग्री की जगह 1.5 डिग्री सेल्सियस की सीमा के भीतर रखने, फ़ॉसिल ईंधन के प्रयोग में कमी लाने पर सहमति बनी। सहभागी 195 देशों में से 176 देशों ने स्वेच्छा से ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में एक निश्चित प्रतिशत तक कटौती करने का इरादा ज़ाहिर किया। यह अलग बात है कि संयुक्त राष्ट्र के शोध अध्ययन के मुताबिक़ यदि ये 176 देश ग्रीन हाउस गैस में सन्तुलन रखने के लिए कार्बन का उत्सर्जन कम करने का दायित्व लें और उसे निभायें, तब भी इस शताब्दी के अन्त तक तापमान 3 से 3.5 डिग्री सेल्सियस तक पहुँचने का ख़तरा बना हुआ है। इसका यह अर्थ हुआ कि समुद्र का जलस्तर इतना अधिक बढ़ जायेगा कि कई द्वीपीय देश और शहर मिट जायेंगे। सम्मेलन में कोई भी ठोस निर्णय नहीं लिया गया है और न ही लक्ष्य प्राप्ति की कोई ठोस योजना ली गयी है। यहाँ केवल कार्ययोजना की रूपरेखा ही तय की गयी है, जिसका पालन करने की कोई ज़िम्मेदारी तय नहीं है। पालन न करने की स्थिति में किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति या किसी दण्ड का कोई प्रावधान नहीं है। ज़ाहिर है वायदों का पालन करना हर देश की मनमर्जी पर निर्भर है। बस वायदा करना और फिर हर पाँच साल पर इसकी समीक्षा करते रहना और यह संकल्प दोहराते रहना कि पहले की अपेक्षा वे उत्सर्जन में कमी लाने का और बेहतर प्रयास करेंगे। यह एक बहुत बड़ी धोखाधड़ी है। स्वयं अमेरिकी अन्तरिक्ष संस्थान के भूतपूर्व वैज्ञानिक जेम्स हानसेन ने पेरिस सम्मेलन में किये गये वायदों को बकवास कहा है। उनका कहना है कि वे महज़ खोखले शब्द हैं जिन पर कोई ठोस कार्रवाई नहीं होनी है। जहाँ तक जीवाश्म ईंधन में कमी लाने का सवाल है, किसी अन्य सस्ते विकल्प के अभाव में यह सम्भव ही नहीं है क्योंकि जब तक जीवाश्म ईंधन सबसे अधिक सस्ता मिलता रहेगा तब तक यह जलाया जाता रहेगा।

सम्मेलन में जिस प्रकार तापमान को 1.5 डिग्री सेल्सियस वृद्धि की सीमा में रखने का लक्ष्य लिया गया है उससे उनके इरादों पर सन्देह पैदा होता है। इस लिहाज़ से दुनिया को 2030 तक जीवाश्म ईंधन का इस्तेमाल बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए। परन्तु इस लक्ष्यप्राप्ति की ठोस कार्रवाई क्या होगी इसके बारे में पेरिस सम्मेलन कुछ नहीं कहता। यूँ तो 2 डिग्री वृद्धि की सीमा के लिए भी जितना इरादा ज़ाहिर किया गया है उसके मुकाबले उत्सर्जन में काफ़ी कटौती की ज़रूरत पड़ेगी। दूसरा, यह कि नया समझौता 2020 के पहले प्रभावी नहीं होगा और तब तक 1.5 की लक्ष्यप्राप्ति का मौक़ा निकल चुका रहेगा बशर्ते दुनिया की विकसित अर्थव्यवस्थाओं ने अपने को आमूलचूल बदल न लिया हो।

पेरिस समझौते में कहा गया कि विकसित देशों को विकासशील देशों को अतिरिक्त वित्तीय सहायता देनी चाहिए। यह सहायता कोई दान स्वरूप नहीं होगी, बल्कि इसे एक क़र्ज़ के तौर पर दिया जाना है। मतलब साफ़ है पिछड़े देशों का जलवायु सम्बन्धी धन इसलिए मुहैया कराना कि वे फ़ॉसिल ईंधन से इतर ईंधन पर अपनी निर्भरता बढ़ायें। उस फ़ॉसिल ईंधन का त्याग कर दें जिसकी बदौलत अमेरिका और अन्य विकसित देशों को समृद्धि हासिल हुई। परन्तु स्थिति यह है उन्होंने हर साल 100 बिलियन डॉलर का वायदा करके केवल 2 बिलियन डॉलर सालाना जमा किया है जबकि ज़रूरत 400 बिलियन डॉलर से भी अधिक की है। दुनिया को संकट से बचाने की उनकी सारी प्रतिबद्धताओं की अब पोलपट्टी खुल चुकी है। देखा जाये तो लुटेरी नीतियों के दम पर विकसित हुए ये देश ही दुनिया के 75 प्रतिशत कार्बन उत्सर्जन के लिये ज़िम्मेदार हैं। इसलिए विश्व के कुल कार्बन उत्सर्जन का स्तर नीचे लाने में यूँ भी उनका योगदान ज़्यादा होना चाहिए।

यह सच है कि कार्बन उत्सर्जन नहीं घटाया गया तो दुनिया ऐसे संकट में फँस जायेगी जहाँ से पीछे लौटना सम्भव न होगा। इसका नतीजा दिखायी भी पड़ने लगा है मौसम में तेज़ी के साथ उतार-चढ़ाव हो रहे हैं। जलवायु में असाधारण बदलाव दिखने लगा है। तामिलनाडू जैसे कम पानीवाले और सूखे की मार से त्रस्त इलाक़े में पिछले दिनों बाढ़ ने कितना क़हर ढाया था, इससे हम सभी वाकिफ़ हैं। उत्तराखण्ड, जम्मू-कश्मीर की बाढ़, आन्ध्र प्रदेश में चक्रवात जैसे उदाहरण भारत में ही नहीं बल्कि दुनियाभर में देखे जा सकते हैं। अमेरिका, जापान, चीन से लेकर अन्य देशों में भी प्राकृतिक आपदाओं का सिलसिला बढ़ गया है। ग्लेशियर पिघलकर संकट की स्थिति पैदा कर सकते हैं। इससे कई देशों के सामने वजूद का संकट पैदा हो सकता है। आज अण्टार्कटिका की मोटी बर्फीली परत के टूटने का ख़तरा पैदा हो गया है। यह संकट लोगों को अपनी जगह-ज़मीन से उजाड़ देगा और लोग दर-दर भटकने के लिए मजबूर हो जायेंगे। ऐसी भयावहता को जलवायु संकट पर सम्मेलनों के नाम से होनेवाली नौटंकियाँ नहीं रोक सकतीं। जलवायु परिवर्तन केवल पर्यावरणीय मसला नहीं, यह सामाजिक और पारिस्थितिकीय संकट है। यह पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली का संकट है जहाँ मुनाफ़े को किसी भी क़ीमत पर कम नहीं किया जा सकता। फ़्रीज जैसे उपभोक्ता सामानों के अलावा कार्बन उत्सर्जन के लिए सबसे अधिक परिवहन तन्त्र ज़िम्मेदार होता है उसका प्रयोग राष्ट्रीय या अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर हो अथवा जल, हवा या ज़मीन पर हो लेकिन बाज़ार और मुनाफ़े की मौजूदा व्यवस्था से संचालित कोई भी देश इसमें कमी लाने या वैकल्पिक परिवहन तन्त्र मुहैया कराने का इरादा तक ज़ाहिर नहीं कर सकता। बी.पी., शेवरॉन, एक्सान मोबिल, शेल, सउदी अरामको और ईरानी तेल कम्पनी जैसी खनन और सीमेण्ट उत्पादन में लगी कम्पनियाँ जो जलवायु संस्थान के अध्ययन के मुताबिक़ 2/3 हिस्सा ग्रीन हाउस गैस का उत्सर्जन कर रही हैं, अभी भी चालू स्थिति में हैं, न इन्हें बन्द किया जा सकता है और न ही मुनाफ़े को ख़तरे में डालते हुए इनमें उत्पादन के सुरक्षित तरीक़े अपनाये जा सकते हैं। यह केवल मनुष्य की बुनियादी ज़रूरतों को केन्द्र में रखनेवाली समाजवादी उत्पादन प्रणाली के ज़रिये ही सम्भव है।

पेरिस सम्मेलन की सार्थकता सिद्ध करने के लिए मोदी कितनी भी 'जलवायु न्याय' की ढपली बजाते रहें अन्याय और शोषण झेलती भारत की मेहनतकश आबादी को अब किसी भुलावे में नहीं डाला जा सकता है। उनकी ज़िन्दगी की ठोस हक़ीक़तें शासकों के सारे फ़रेबों को उघाड़ कर सामने ला रही हैं।

– मीनाक्षी

समाजवादी चीन और पूँजीवादी चीन की दो फैक्टरियों के बीच फर्क

आज चीन में मज़दूरों का जबरदस्त शोषण हो रहा है। दुनिया भर के अन्य पूँजीवादी देशों की तरह यहाँ पर भी मज़दूरों के लिए नरक और पूँजीपतियों के स्वर्ग है। इस स्वर्ग का फर्क चीन की सरकारी नीतियों से, वहां की फैक्टरियों से, मज़दूरों के रहने की जगह से, पूँजीपति वर्ग की ऐयाशी से, अमीर-गरीब की खाई से पता चल जाता है। इस फर्क को समझने का सबसे बढ़िया तरीका यही हो सकता है कि हम इन दोनों समय में मज़दूरों की ज़िन्दगी के बीच फर्क पर सिलसिलेवार ढंग से बात करें। वैसे यह बात स्पष्ट है कि अलग उत्पादन सम्बन्ध वाले देशों में ज़मीन-आसमान का अंतर होगा, जहाँ चीन में उत्पादन के साधनों पर सामूहिक मालिकाना था वहीं आज के चीन में निजी मालिकाना है। इस फर्क को समझने के लिए आज के पूँजीवादी चीन में मौजूद फैक्टरी फॉक्सकॉन से समाजवादी चीन में मौजूद जनरल निटवेअर फैक्टरी के बीच अंतर स्पष्ट करेंगे। यह वही फर्क है जो मज़दूर रोज़ रोज़ जीते हुए महसूस कर सकता है। फॉक्सकॉन चीन की सबसे बड़ी वेंडर कंपनियों में से एक है जिसमें इलेक्ट्रॉनिक गैजेट बनाये जाते हैं। यह चीन में शेनजेन इलाके में बसी हुयी है। यह ठेके पर काम को लेती है। यह वही फैक्टरी है जहाँ मज़दूरों ने काम की स्थितियों से तंग आकर 18 नौजवान मज़दूरों ने आत्महत्या की है। इस फैक्टरी में मालिक का मेंजेमेंट मज़दूरों के लिए नियम क़ानून बनाता है और पुलिस भी फॉक्सकॉन में नहीं घुस सकती है। 2012 में करीब 150 मज़दूरों ने सामूहिक रूप से आत्म हत्या करने की धमकी दी थी। दूसरी ओर समाजवादी चीन की जेनेरल निटवेर कंपनी में कापडे सिलाई व जेकेट, स्वेटर बनते थे। परन्तु यहाँ मज़दूर ही फैक्टरियों में अपने लिए क़ानून बनाते थे, उत्पादन के लिए योजनाएँ बनाते थे। आत्महत्या तो दूर की बात है ये फैक्टरियाँ ही जीवन का केंद्र थी। इसके उत्पादों को चीन की जनता के लिए व निर्यात के रूप में अन्य देशों में भी भेजा जाता था।

जनरल निटवेयर बनाम फॉक्सकॉन

एक आम परिचय के बाद हम सिलसिलेवार कुछ बुनियादी नज़र डाल सकते हैं। किसी भी फैक्टरी के बारे में सोचते वक्त जो सबसे पहला सवाल ज़हन में आता है वह यही है कि उसका फैक्टरी मालिक कौन है और कहाँ का रहने वाला है। फॉक्सकॉन के चेयरमेन का नाम टेरी गोउ है और इसकी संपत्ति करीब 7000 करोड़ डॉलर है। यह ताइवान का रहने वाला है। फॉक्सकॉन की पहली फैक्टरी को चीन में शेनजेन में लगाया गया था। लेकिन आज पूरे चीन में फॉक्स्कॉन की 12 फैक्टरियाँ हैं। सबसे पहला और सबसे बड़ा प्लांट शेनजेन में ही है। शेनजेन दक्षिणी चीन में हांगकांग के पास बसा एक शांत मछुआरों का इलाका था परन्तु 1980 के बाद इसे आर्थिक विकास के लिए चुने जाने के बाद से यह गुडगाँव सरीखे मेट्रोपोलिटन शहर में विकसित हुआ है। फॉक्सकॉन में कार्यरत फोक्सकोन एक महिला मज़दूर चेन ने सीएनएन चैनल को साक्षात्कार में कहा कि "मैं अब और नहीं सह सकती हूँ। हर दिन ऐसा ही होता है, काम करती रहूँ और बिस्तर पर जाकर पड़ जाऊँ।"

ल्यू नाम के एक मज़दूर ने अपने शब्द कविता में उतारते हुए लिखा कि "वर्कशॉप, यहाँ मेरा यौवन उलझ गया, असेम्बली लाईन में हज़ारों मज़दूर ऐसे खड़े होते हैं जैसे शब्द एक पंक्ति में लिखे जाते हों, जल्दी करो! आगे बढ़ो!! बीच में खड़ा सुपरवाइज़र भौंकता है, और एक बार आप असेंबली लाइन में आ गए तो एकमात्र विकल्प समर्पण होता है। जवानी धीरे धीरे ख़त्म होती है और मैं इसे दिन रात पिसते, दबते हुए, मोल्ड होते और पोलिश होकर छोटे छोटे मज़दूरों के टुकड़ों में तब्दील होता देखता हूँ।"

जनरल निटवेअर को 1952 में पेकिंग शहर में सोवियत मॉडल की औद्योगीकरण की नीति के अनुरूप बनाया गया था। इसमें 1971 में 3004 मज़दूर कार्यरत थे। मुख्यतः कपड़ों की सिलाई से लेकर जींस स्वेटर व अन्य उत्पाद भी बनाये जाते थे।

फैक्टरी फ्लोर पर अंतर

सबसे पहले आय को लेते हैं। फॉक्सकॉन में एक मज़दूर की मासिक आय करीब 1200 युआन है जबकि तमाम स्वतन्त्र एजेंसियों ने इस ओर इंगित किया है कि शहर में रहने के लिए एक मज़दूर को करीब 2293 युआन मिलने चाहिए यानी मासिक आय करीब 1000 युआन कम है। यही वह सबसे बड़ा कारण है जिस कारण से दुनिया की तमाम फैक्टरियाँ चीन में निवेश करती हैं क्योंकि यहाँ पर बेहद सस्ते श्रम पर मज़दूरों को लूटा जा सकता है। और यह गैर कानूनी भी नहीं है क्योंकि सरकार के अनुसार शेनजेन में न्यूनतम वेतन 938 युआन का है यानी फॉक्सकॉन क़ानूनी तरीके से मज़दूरों को मनचाहे तरीके से लूटती है। यही हाल आज गुडगाँव और भारत की भी फैक्टरियों का है जहाँ पर न्यूनतम वेतन से अधिक आय मिलने के बावजूद मज़दूर इतना कम पाता है कि वह बस जिंदा रहता है।

दूसरी ओर, जनरल निटवेअर में 1971 में मज़दूरों की औसतन मासिक आय 65 युआन थी। पेकिंग में 1971 में एक मज़दूर के ठीक से जीवन जीने के लिए 12 युआन मासिक की ज़रूरत थी। यहीं पर साफ़ दिख सकता है कि समाजवादी चीन में मज़दूरों के जीवन स्तर और पूँजीवादी चीन के जीवन स्तर में बड़ा अंतर मौजूद था। परन्तु सिर्फ आय का फर्क ही समाजवाद और पूँजीवाद के फर्क को नहीं दिखाता है। दूसरी चीज़ जो फैक्टरियों के बारे में सबसे ज़रूरी बात है वह है कि मज़दूर फैक्टरी में असेंबली लाईन पर किस तरह काम करते हैं?

फॉक्सकॉन में मज़दूरों पर जिस मैनेजमेंट व्यवस्था को लागू किया जाता है उसे गुओ (फॉक्सकॉन के चेअरमेन) के शब्दों में जाना जाए तो बेहतर है। गुओ के अनुसार "कम्पनी के मुनाफे के लिए तानाशाही लागू" करनी चाहिए। और इस तानाशाही को फॉक्सकॉन ने लागू भी किया है। महीने में हर मज़दूर को 120 घंटे से ज्यादा ओवरटाइम लगाना पड़ता है, यानी कि 8 घंटे के काम के ऊपर हर दिन 4 घंटे से ज्यादा का ओवरटाइम लगाना होता है। कोई भी मज़दूर चाह कर भी 8 घंटे काम नहीं कर सकता है क्योंकि फैक्टरी पहले ही मज़दूरों से स्वैच्छिक ओवरटाइम के फॉर्म पर हस्ताक्षर करवा लेती है। साप्ताहिक छुट्टी की जगह 2 हफ्ते में एक बार ही छुट्टी मिलती है। काम से पहले और काम के बाद अलग से मज़दूरों को मैनजमेंट के उपदेश सुनने पड़ते हैं। इसे मैनेजमेंट मीटिंग कहता है परन्तु इसमें मज़दूर कुछ भी नहीं बोल सकते हैं। इस मीटिंग में मैनेजमेंट की तरफ से मज़दूरों को आदेश दिए जाते हैं और नियम बताये जाते हैं। इसमें मज़दूरों की तरफ से कोई और बात नहीं कही जा सकती है। मीटिंग ख़त्म होने पर मैनेजमेंट सवाल पूछता है कि आप कैसे हैं जिस पर मज़दूरों को यही कहना होता है "अच्छे, बहुत अच्छे!"। फैक्टरी में मज़दूरों को मैनेजमेंट आदेश देकर हर महीने में 2-3 बार दिन और रात की शिफ्ट में बदली करता रहता है। प्रोडक्शन मैनेजर यानी फ्रंट लाईन मैनेजर मज़दूरों को हर छोटी से छोटी बात के लिए डांटते हैं और मज़दूरों को ज़लील करते हैं। काम के दौरान न तो कोई बात कर सकता है, शरीर खुजा सकता है या कि अपनी जगह से हिल सकता है। मैनेजर मज़दूरों को परखने के लिए टेस्ट भी लेते रहते हैं जैसे कभी भी प्रोडक्शन का लक्ष्य बढाया जा सकता है और अगर मज़दूर उस लक्ष्य को पूरा कर लेता है तो उससे भी बढ़ा हुआ लक्ष्य मज़दूर को दिया जाता है। मैनेजेमेंट कभी मज़दूरों की सजगता को देखने के लिए उत्पाद का कोई हिस्सा गायब कर सकता है। और फैक्टरी में इन नियम क़ानूनों के लागू न होने पर मज़दूरों को सजा दी जाती है। प्रोडक्शन धीरे होने पर प्रोडक्शन मैनेजर का मज़दूर पर चिल्लाना और बेइज्ज़त करना तो बेहद आम बात होती है। सुन देन युंग नाम के एक मज़दूर ने 19 आईफ़ोन में से एक खो दिया था जिसपर मैनेजमेंट ने इस घटना के नाम पर सुन को जो प्रताड़ना दी उससे तंग आकर सुन ने 12वीं फ्लोर से कूद कर आत्महत्या कर ली। मान जियान नाम के मज़दूर से फॉक्सकॉन के मैनेजमेंट ने मामूली घटना पर सजा देते हुए पूरे शॉप फ्लोर और शौचालय को साफ़ करवाया और प्रताड़ित किया जो उसकी आत्महत्या का कारण बताया जाता है। हालांकि बाद में यह भी पता चला कि मौत से पहले उसको पीटा गया था जिसपर यह शक भी पैदा हुआ कि उसे मैनेजमेंट ने ही पीटकर कर मरवाया था और घटना को छुपाने के लिए आत्महत्या का स्वांग रचा। एक मज़दूर ने बताया कि फोक्स्कोन का मैनेजमेंट गेंगस्टर सरीखे लोग से भरा हुआ है। गलती करने पर मज़दूरों से चेअरमेन गुओ के वाक्यों को 300 से अधिक बार लिखने को बोला जाता है। लान में घुसने से लेकर या गलत गेट जाने पर भी कम्पनी के सेक्युरिटी गार्ड मज़दूरों को पीटते हैं। यहाँ गार्ड को बिजली की रोड मिलती है जो लगने पर मज़दूर को बेहोश तक कर सकती है। इस फैक्टरी की चौहद्दियों में पुलिस तक नहीं घुस सकती है। यही उस नारकीय ज़िन्दगी की एक छोटी सी तस्वीर है जिसे मज़दूर रोज-रोज फॉक्सकॉन में जीता है। यहाँ एक बेहद संक्षिप्त रूप से कुछ बिन्दुओं को इंगित किया गया है जिससे कि पूँजीवादी चीन की आज की तस्वीर साफ़ हो सके।

अब एक बार हम जनरल निटवेअर की तरफ भी इस रोशनी से नज़र डालें। सबसे पहले यह समझना ज़रूरी है कि चीन में इस समय सांस्कृतिक क्रान्ति का प्रयोग जारी था। सबसे पहले हम यह समझ लें कि फैक्टरी में मैनेजमेंट का स्वरूप कैसा था? क्योंकि यहाँ मालिकाना निजी नहीं मज़दूरों के राज्य का था। हर फैक्टरी में मज़दूरों की पार्टी के अंतर्गत गठित पार्टी के साथ मिलकर मज़दूरों की कमिटियाँ फैक्टरी को चलाती थीं। हर फैक्टरी में फैक्टरी पार्टी कमिटी का गठन किया जाता है। यह फैक्टरी को राजनितिक नेतृत्व देने का काम करती थी। पार्टी कमिटी में फैक्टरी के हर संस्तर से भागीदारी होती थी। फैक्टरी पार्टी कमिटी क्रांतिकारी कमिटी और मज़दूरों की मैनेजमेंट समूह के साथ फैक्टरी के कामों को देखती थी। क्रांतिकारी कमिटी में भी फैक्टरी के हर संस्तर से भागीदारी होने का नियम था। मज़दूरों के मैनेजमेंट समूह में सिर्फ़ मज़दूरों की भागीदारी होती थी। यहाँ यह बात स्पष्ट करनी इसलिए ज़रूरी थी कि यह समझा जा सके कि कोई फैक्टरी फॉक्सकॉन के मालिक गुओ या भारत के अम्बानी, अदानी के बिना चल सकती है। लेकिन सिर्फ यह कह देना ही काफी नहीं है क्योंकि अगर अम्बानी न भी हो और नेतृत्व ही गद्दार हो तो अम्बानी अदानी बाद में पैदा हो जायेंगे। इसके लिए ही पार्टी कमिटी, क्रांतिकारी कमिटी और मज़दूरों का मैनेजमेंट समूह मिलकर राजनीति पर कमान बनाये रखें तो ही सही मायने में समाजवाद को पूँजीवाद में तब्दील होने से रोका जा सकता है। मज़दूरों को फैक्टरी में 8 घंटे ही काम करना होता था। फैक्टरी में नियम कानून मिलकर मज़दूरों द्वारा ही तय किये जाते थे और किसी भी गैर ज़रूरी नियम को बदला जा सकता था। इस फैक्टरी में कोई भी फॉक्सकॉन सरीखा प्रोडक्शन मैनेजर नहीं था जो मज़दूरों पर चिल्लाता और उन्हें बेइज्ज़त करता हो। यहाँ पर हर हाल में उत्पादन बढ़ाने पर जोर की जगह मज़दूरों की ज़िन्दगी पर जोर था। मज़दूर इन फैक्टरियों में मन लगाकर काम करते थे और मशीनों को अपनी सुविधा अनुसार बदल भी सकते थे। कुछ उदहारण से इसे समझा जा सकता है। जनरल निटवेअर में डाई और प्रिंट वर्कशॉप में मज़दूरों ने एक मशीन को तब्दील कर दिया जिसमें पहले एक ही रंग इस्तेमाल होता था वहां मज़दूरों ने दो रंग इस्तेमाल किये जिससे काम का समय आधा हो गया। काम के दौरान एक साथ हाथ और पैर का इस्तेमाल करने वाली मशीन को तब्दील कर उसे सिर्फ हाथ से संचालित हो सकने वाली मशीन में तब्दील कर दिया। मज़दूरों की टीमें ही जनता के बीच जाकर उनकी ज़रूरत के कपड़ों के लिए योजनायें बनाती थी जिसमें फैक्टरी कमिटी और क्रांतिकारी कमिटी भागीदारी करती थी। मज़दूरों और नेतृत्व की बैठकों में इसका ख़ास तौर पर ध्यान रखा जाता था कि मज़दूरों की समस्याएं क्या हैं और उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है। मज़दूरों को ही उत्पादन के लिए, काम के लिए खुद बैठकें कर योजना बनानी होती थी और मज़दूरों द्वारा पेश की गयी योजना को क्रांतिकारी कमिटी और पार्टी कमिटी मिलकर तय करती थी। यहाँ ये फैक्टरियाँ सिर्फ उत्पादन की मशीनें नहीं थी बल्कि मज़दूरों को लगातार राजनीतिक साहित्य ख़ास तौर पर मार्क्सवाद पढ़ने पर जोर दिया जाता था जिससे वे राजनीति को कमान में रखकर फैक्टरी में उत्पादन करें। इस पूरे दौर को समझने के लिए हमें यह समझना होगा कि यह दौर उत्पादन संबंधों को बदलने का था। उत्पादन के दौरान यहाँ जो संरचना पेश की गयी वह भी बदल रही थी परन्तु 1976 में पूँजीवादी पुनर्स्थापना के बाद यह प्रक्रिया थम गयी और इसने फॉक्सकॉन सरीखी फैक्टरियों को जन्म दिया। खैर हम अभी इस विषय में और आगे नहीं जायेंगे और अपनी बात यहीं ख़त्म करेंगे। यहाँ जिस बात की और हम इंगित करना चाहते थे वह

(पेज 7 पर जारी)

फ़ासीवादी वहशीपन की दिल दहलाने वाली दास्तान

विश्व पूँजीवाद आज फिर घोर संकटों में घिरा हुआ है और एक बार फिर दुनिया में फ़ासीवादी ताक़तों को बढ़ावा दिया जा रहा है। फ़ासीवाद पूँजीवाद के भीषण संकट से उपजा आन्दोलन था जो अपने रूप और अन्तर्वस्तु में घोर मानवद्रोही था। मनुष्यजाति के एक हिस्से के प्रति इस कदर अन्धी नफरत उभारी गई कि उन्हें इन्सान ही नहीं समझा जाने लगा। लाखों लोगों को सिर्फ मारा ही नहीं गया बल्कि तरह-तरह से यातनाएँ देकर मारा गया। लेकिन नफरत की इस आँधी ने इन्सानों का शिकार करने वालों को भी बख्शा नहीं था। उनके भीतर का इन्सान भी मर गया था। लाखों लोगों को मौत के घाट उतारने वाले आशवित्स शिविर का संचालक फ्रांज़ लैंग वहां गैस चेम्बरों में मरने वाले यहूदियों को महज ''इकाइयाँ'' मानता था जिन्हें ''निपटाया'' जाना था। अनेक सनकी डाक्टर इस बात पर ''अनुसन्धान'' करते थे कि अलग-अलग ढंग से यातनाएँ दिये जाने पर मरने से पहले कितना दर्द होता है। यहाँ हम दूसरे विश्वयुद्ध के ख़त्म होने के बाद जर्मनी के न्यूरेम्बर्ग में हिटलर के नाज़ी सहयोगियों पर चलाये गये अन्तरराष्ट्रीय मुकदमे की शुरुआत का ब्योरा दे रहे हैं। इसे 'असली इन्सान' जैसे प्रसिद्ध उपन्यास के लेखक और सोवियत पत्रकार बोरीस पोलेवोइ की किताब 'नाज़ियों से आख़िरी हिसाब' से लिया गया है। इसे पढ़कर अनुमान लगाया जा सकता है कि फ़ासीवाद जैसे मानवद्रोही विचारों को अगर बेरोकटोक छोड़ दिया जाये तो ये वहशीपन की किस हद तक जा सकते हैं। दंगों में स्त्रियों के गर्भ से शिशुओं को निकालकर टुकड़े कर डालना और जीते-जागते इंसानों की खाल से जूते बनाने जैसी हरकतों के पीछे एक ही मानवद्रोही सोच काम करती है। — सम्पादक

हमारी नींद और भूख हराम हो गयी

अमरीकी मुख्य अभिवक्ता, जस्टिस जैक्सन ने मुक़दमा शुरू करते हुए जो भाषण दिया था, उसका उद्धरण मैं पहले ही दे चुका हूँ, ''हम मानवता के ख़िलाफ़ हुए अपराधों का सबूत पेश करने जा रहे हैं। महोदय मैं सावधान कर रहा हूँ कि यह सबूत ऐसा है कि आपकी नींद हराम हो जायेगी।''

मैं स्वीकार करता हूँ, हम सोवियत पत्रकारों ने इन शब्दों पर अविश्वास-भरी निगाहें लड़ायी थीं। हम जो बाबीयार, चेव्लिका, मायदानेक और ओस्वीसिम अपनी आँखों से देख चुके थे क्या अब और ज़्यादा भयानक दृश्य भी देख सकते थे। पर जस्टिस जैक्सन ही सही साबित हुए। नाजी रायख में नरसंहार एक बड़ा, व्यापक रूप से विकसित, सुनियोजित तथा संगठित उद्योग था। हम लोग ख़ौफ़नाक सबूतों के आदी हो गये थे - इतने बेदर्द-से हो गये थे कि न हमारी नींद खोयी, न भूख।

पर हमारी भूख और नींद दोनों हराम हो गयी - अलंकारिक नहीं वास्तविकता की भाषा में - जब मुख्य सोवियत अधिवक्ता के सहकारी, लेव स्मर्नोव ने भाषण शुरू किया। वह एक बहुत सुशिक्षित वकील थे और सुन्दर भाषण करते थे, जो न्यायाधीशों की भावना नहीं जगाता था, बल्कि तर्क को जागृत करता था। उन्होंने तथ्य पेश किये और फिर उनके प्रमाण में ऐसे सबूत पेश किये कि कटघरे में मौजूद युद्धापराधियों के बीच भी हंगामा मच गया। वे आपस में बहस करने लगे और शाख्ट को तो ऐसा सन्निपात या उन्माद सा हो गया कि उसे दवा देकर शान्त करना पड़ा।

नहीं, यह दृश्य भूलना नहीं चाहिए और मैं इसका विस्तार से वर्णन करूँगा क्योंकि भविष्य में समय बीतने के साथ यह विश्वास करना कठिन हो जायेगा कि ऐसी बातें इस पृथ्वी पर ही हुईं, उस पृथ्वी पर जिस पर तर्क और विवेक वाला मानव रहता है।

हम लोग पिछले दिन ही जान चुके थे कि अगले दिन सोवियत अधिवक्ता बोलेंगे और प्रेस कक्ष जो वसन्त के इन दिनों में कुछ ख़ाली रहने लगा था, अब खचाखच भरा था। जब हम अदालत के कमरे में पहुँचे तो एक आश्चर्यजनक बात देखी, वहाँ प्रदर्शन करने के लिए कुछ धानियाँ या मचान से बने थे और कमरे के बीच में एक बड़ी मेज़ पर चादरों से ढँकी कुछ बड़ी-बड़ी चीज़ें रखी हुई थीं। कपड़े से ढँका कुछ अधिवक्ता की मेज पर भी रखा हुआ था और चमड़े से मढ़ी एक मोटी किताब जो मध्य-युगीन प्रकाशित ग्रन्थों-सी लग रही थी, सहकारी के मेज पर थी।

अपने भाषण के दौरान लेव स्मर्नोव ने इस पुस्तक का ज़िक्र किया। नहीं, यह राइन नदी के किनारे किसी किले के मालिकों के परिवार का चित्रों का एलबम नहीं था, न यह घुड़दौड़ में विजयी घोड़ों के चित्रों का संग्रह ही था। विभिन्न जातियों के लोगों की यह अन्तहीन सूची थी जिन्हें एक नाजी शिविर में गोली

मुकदमे के दौरान कठघरे में बैठे नाज़ी अपराधी। सबसे बायें है हिटलर का युद्ध मंत्री गोयरिंग

मार दी गयी थी या जो गैस द्वारा मार डाले गये थे। अधिवक्ता ने कुछ कठिनाई के साथ वह किताब उठायी और न्यायाधीशों को सम्बोधित करते हुए बोले - ''मेजर-जनरल स्त्रूप ने अपने हाक़िमों के लिए उन लोगों के बारे में जो सूची तैयार की थी जिन्हें वारसा के यहूदी शिविर में सफलतापूर्वक मौत के घाट उतार दिये गये थे, यह उसका सरकारी रिकॉर्ड है। इसमें सिर्फ़ उन लोगों के नाम हैं, जो मार डाले गये। मेरा अनुरोध है कि इसे भौतिक प्रमाण के रूप में शामिल कर लिया जाये।''

इस क्षण सभी की आँखें एकाएक जाकर हैन्स फ्रैंक पर टिक गयीं जो पोलैण्ड का भूतपूर्व गवर्नर-जनरल था, जिसने पोलैण्ड में नाजी व्यवस्था स्थापित की थी, जो यहाँ कठघरे में गहरा रंगीन चश्मा पहने स्थिर बैठा था। इस पिशाच को इतिहास में अपना नाम अंकित कराने की फ़िक्र थी, क्योंकि इसने अपने अपराधों और विचारों की एक डायरी रख छोड़ी थी। मुझे सोवियत मुख्य अधिवक्ता के एक अन्य सहायक लेव शाइनिन ने पहले ही इन हृदयहीन ख़ौफ़नाक डायरियों के बारे में बता रखा था। शाइनिन सोवियत संघ में न केवल एक वकील बल्कि एक लेखक और पत्रकार के रूप में भी जाना जाता था और उसने 'नोट्स ऑफ़ एन इंवेस्टीगेटर' नामक प्रसिद्ध पुस्तक भी लिखी थी।

अब अभियोग पक्ष के पास दर्जनों कापियाँ थीं जिनसे इस नाजी का काला दिल खुलकर जनता के सामने आ गया था।

स्मर्नोव ने फ्रैंक के एक विचार को डायरी से उद्धृत किया - ''हमने 12 लाख यहूदियों को भूख से मर जाने की सज़ा दी, यह बात उतनी महत्व की नहीं है।'' इस उद्धरण पर फ्रैंक एक कटु मुस्कान फेंकता बैठा रहा।

किन्तु, जब मृत व्यक्तियों के नामों वाला ग्रन्थ न्यायाधीशों की मेज पर खिसका दिया गया और वारसा के घेटों के नरसंहार का त्रासदायक वर्णन ज़ोर से पढ़ा गया ताकि सभी उसे सुन लें, फ्रैंक अपनी कुरसी पर पीछे की ओर धँस गया, अपनी पेंसिल तोड़ डाली और इतनी ज़ोर से इधर-उधर खिसकने लगा कि उसकी बगल में बैठे रोजेनबर्ग ने घृणा से उसकी ओर देखा और उसने कोहनी मार दी।

इस ख़ौफ़नाक किताब के हर पृष्ठ, हर पंक्ति से दुनिया को पता लगता था कि राष्ट्रीय समाजवाद व्यवहार में कैसा था।

अमरीकी इस्तगासे की ओर से पहले ही कई दस्तावेज़ पेश किये जा चुके थे, जिनमें काफ़ी विस्तार से बताया गया था कि जर्मनी व उसके अधिकृत क्षेत्रों में किस तरह यहूदियों का बड़े पैमाने पर ख़ात्मा हुआ था। उस ओर से लाखों लोगों की सम्पत्ति छीनी जाने और उन्हें घरों से निकाले जाने व दसियों लाख लोगों को गैस द्वारा मार डाले जाने का ब्यौरा भी दिया गया था। किन्तु, अब तक हमने मेजर जनरल स्त्रूप की रिपोर्ट जैसा कुछ भी देखा-सुना नहीं था। 23 अप्रैल, 1943 को रायख फ्यूहरेर ने क्राकाओ के एस.एस. फ्यूहरेर द्वारा आदेश भेजा कि - वारसा की यहूदी बस्ती को बेरहमी और निष्ठुरता के साथ नेस्तनाबूद कर दिया जाये। इस आदेश के पालन के सम्बन्ध में रिपोर्ट देते हुए स्त्रूप ने लिखा था, ''इसलिए मैंने निश्चय किया कि सारी यहूदी बस्ती को नष्ट कर दिया जाये, हर मकान-समूह में आग लगाकर और वहाँ से किसी को भी निकल भागने न देकर।'' उसने बड़े भावनाशून्य ढंग से बताया था कि किस प्रकार ए.एस., फ़ौजी पुलिस व सफ़रमैना को इन मकान-समूहों को घेरकर, उनसे निकलने वाले रास्तों को रोककर और पहली मंज़िल की खिड़कियों से बाहर फेंक रहे थे और फिर बच्चों और बूढ़ों को उन पर फेंक रहे थे, इस उम्मीद में कि वे बच जायेंगे। फिर ये लोग खुद भी कूद पड़ते थे। उनके हाथ पैर टूट जाते या वे मर जाते। जो लोग इन जलते हुए खण्डहरों से किसी चमत्कारवश बच जाते और बाहर निकलने की कोशिश करते, उन्हें ढूँढ़कर निकाला जाता, जैसा कि रिपोर्ट में कहा गया था - ''जवानों ने मुस्तैदी से अपनी ड्यूटी अदा की और ऐसे लोगों की यातना ख़त्म करने के लिए उन्हें गोली मार दी ताकि अनावश्यक कष्ट समाप्त हो जाये।''

हिटलरी पद्धति के फ़ौजी नौकरशाह स्त्रूप ने अपने हाक़िमों के लिए रिपोर्ट में पूरा ब्यौरा भेजा था। इस तरह वह शायद किसी इनाम की उम्मीद में था। उसने बड़े दम्भपूर्ण ढंग से घोषित किया था कि दसियों हज़ार व्यक्तियों का भाग्य बड़े सुनियोजित ढंग से तत्परतापूर्वक निपटा दिया गया था। रिपोर्ट के अन्त के निकट में उसे लगा कि उसके अफ़सर कहीं यह शक न करने लगें कि उसने उदारता या लापरवाही से काम लिया है। इसलिए

(पेज 15 पर जारी)

फ़ासीवादी वहशीपन की दिल दहलाने वाली दास्तान

(पेज 14 से आगे)

उसने ख़ास तौर पर ज़ोर देकर लिखा था कि जो लोग खण्डहरों में छिप गये थे, उन्हें कुत्तों की मदद से ढूँढ़ निकाला गया। उसने स्वीकार किया कि कुछ भगोड़े गन्दे पानी की नालियों में घुस गये थे जहाँ से उनकी चीख़ें व कराहें सुनायी पड़ रही थीं। तब गैस पलटन बुलाकर वहाँ तैनात की गयी, ताकि फिर 'उनकी अनावश्यक तक़लीफ़ों को ख़त्म किया जा सके।' गन्दी नालियों के मेन होलों से धुएँ के बम भी फेंके गये। जब लोग सुरक्षा के लिए नालियों से बाहर निकलने लगे तो उन्हें अपने बिलों से निकलते खरगोशों की तरह गोलियों से भून दिया गया। स्क्रूप ने लिखा कि एक दिन में 183 मैन-होलों को खोलकर उनमें धुँआ पैदा करने वाले बम फेंके गये। यह समझ कर कि ये बम ज़हरीली गैस के हैं, यहूदी नालियों से बाहर सुरक्षा के लिए आने लगे। बहुत सारे लोग तब मर गये, जब गन्दे सीवरों को बम से उड़ा दिया गया - दुर्भाग्यवश उनकी संख्या ठीक से नहीं जानी जा सकी। इस काम में सफ़रमैना ने बड़ी विशेषता दिखायी।

इस बर्बर काण्ड के सम्बन्ध में अपने मातहत आदमियों के काम के ढंग का वर्णन करते हुए स्क्रूप ने रिपोर्ट में एक कवित्वपूर्ण क्षेपक जड़ा और कहा कि राष्ट्रीय समाजवादी जर्मन : 'जितना ही प्रतिरोध हुआ उतनी ही निर्दयता और बेरहमी से एस.एस., पुलिस और फ़ौज ने काम लिया... उन्होंने अपना कर्तव्य बड़े गहरे सहयोग की भावना से पूरा किया और इसमें उन्होंने महान फ़ौजी भावना भी प्रदर्शित की। उन्होंने सबेरे से लेकर रात तक अथक परिश्रम किया। उन्होंने यहूदियों को खोज निकाला और मौत के घाट उतार दिया... अफ़सर, जवान व पुलिस ने विशेषकर उन्होंने जो मोर्चों पर तैनात रह चुके थे - सच्ची जर्मन भावना का सच्चे साहसपूर्ण ढंग से प्रदर्शन किया।'

ये लोग नाजी राज्य के सच्चे आदर्श नागरिक थे। यही वह उदाहरण था जिसकाकठघरे में बैठे लोगों ने अनुकरण किया था, जिन्होंने 'सच्चे ट्यूटनों' को शिक्षित करने का प्रयास किया था। यही ढंग था जो उन्होंने अपने राष्ट्रीय कर्तव्य को पूरा करने के लिए अपनाया था, और यही उनकी समझ थी - सम्मान, साहस व सैनिक शौर्य के मानव मूल्यों की। यही था जिसका उन्हें दम्भ था और जिसके लिए उन्हें पुरस्कृत किया गया था।

मध्यान्तर में व्यग्रतावश उँगलियाँ चटखाते हुए यूरी यानोव्स्की ने कहा, ''तुम जानते हो, अभी मेरे मन में क्या विचार आया। अगर उन सब लोगों का ख़ून, जिन्हें इन्होंने मारा, ज़हर दिया था, जिन पर अत्याचार किये, ज़मीन पर गिरता तो ये लोग ख़ून की झील में ही डूब जाते।

यह सच बहुत वीभत्स और ख़ौफ़नाक ज़रूर था, लेकिन जैसा कि बाद में मालूम पड़ा, सबसे ज़्यादा ख़ौफ़नाक बात तो अभी आनी थी। हॉल के मध्य में जो मचान से बने हुए थे और भारी-भरकम चीज़ों से भरी मेजें थीं वे अभी ढँकी हुई थीं। मध्यान्तर के बाद इस्तगासे के अधिवक्ता ने मेज पर रखी एक वस्तु पर से परदा हटा दिया। विमूढ़ दर्शक स्तब्ध रह गये और फिर दहलकर आपस में कानाफूसी करने लगें। सुन्दर संगमरमर की पीठिका पर इन्सान का सिर जड़ा हुआ था और उन सब पर शीशे का घण्टेनुमा एक ढक्कन था। जी हाँ, एक आदमी का सिर जिसपर बाल पीछे की ओर काढ़े गये थे, यह किसी अनबूझ ढंग से छोटा कर दिया गया था और एक बड़ी मुट्ठी के बराबर रह गया था। स्पष्ट था कि यह एक सज़ावट की चीज़ बनायी गयी थी और यातनागृह में किसी राक्षसी 'कारीगर' ने इसे सज़ावटी सौगातों

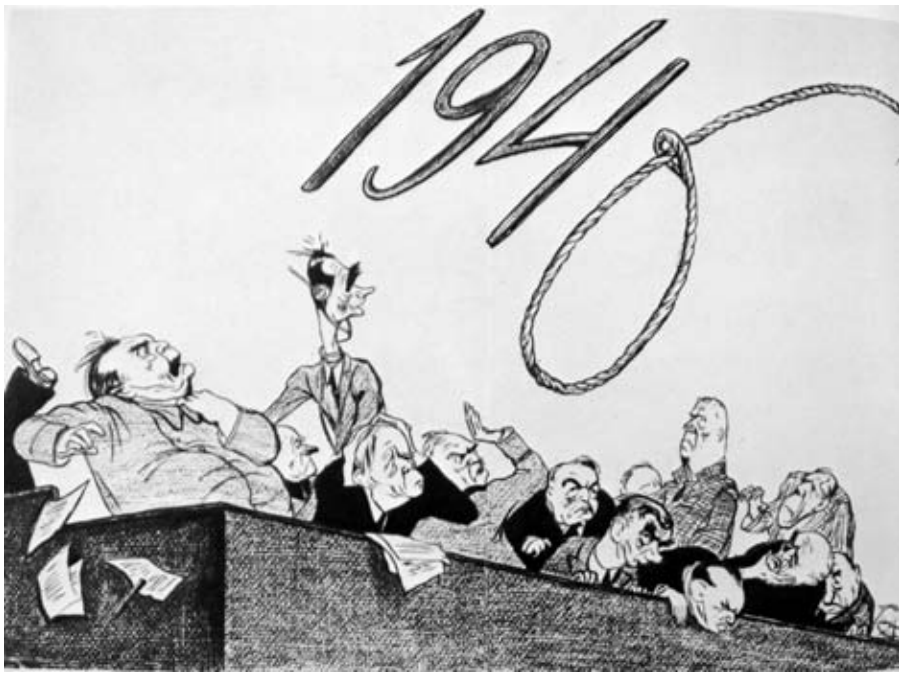

प्रसिद्ध सोवियत कार्टूनिस्टों की तिकड़ी 'कुक्रीनिक्स्की' द्वारा मुकदमे के दौरान बनाया गया एक कार्टून

के रूप में गढ़ा था। यातना शिविर का मुख्य अफ़सर वहाँ आने वाले विशिष्ट लोगों को ये सौगातें यादगार के तौर पर दिया करता था। अतिथि जिस क़ैदी का सिर पसन्द करते या करतीं - उसे मार डाला जाता, उसका सिर कुचलकर किसी तरह गरदन से निकाल लिया जाता, किसी तरकीब से सिर को छोटा कर दिया जाता और वह सिकुड़ जाता, फिर उसमें कुछ ठूँस कर उसे पीठिका पर मूर्ति या आभूषण की तरह जड़ दिया जाता।

जब घण्टेनुमा शीशे के नीचे हम उस सिर को देख रहे थे तो हमारे रोंगटे खड़े हो रहे थे और हमें मतली आ रही थी। दर्शक दीर्घा में कोई औरत हमारे सिर के क़रीब ही उन्माद में चीख़ने लगी। लोग उसे बाहर ले जाने के लिए दौड़े।

लेव स्मर्नोव ने अपना भाषण जारी रखा। कोनिग्सबर्ग शोध संस्थान के एक 'वैज्ञानिक' साइमण्ड मजूर का सबूत उन्होंने पेश किया। इस 'वैज्ञानिक' ने शान्त वैज्ञानिक शब्दावली में वर्णन किया था कि संस्थान की प्रयोगशालाएँ किस प्रकार उस मानव मांस, चर्बी और खाल का 'तर्कसंगत औद्योगिक उपयोग' खोज रही थीं, जो बड़े विशाल मृत्यु शिविरों से फालतू कचरे की तरह निकलती थी।

मचानों और मेजों से अधिवक्ता के निर्देश पर सभी चादरें हटा दी गयीं। हमने इन्सान की खाल पर होने वाले प्रयोग और प्रकियाएँ देखीं, प्रक्रियाओं की विभिन्न मंज़िलें, तुरन्त खींची गयीं खाल, जिससे मांस छील दिया गया था, पकायी गयी खाल और उस चमड़ी से बनायी गयी वस्तुएँ - महिलाओं के लिए सुन्दर जूते, हैण्डबैग, काग़ज़ात रखने के थैले, कोट, ब्लाटिंग पैड। विभिन्न प्रकार के साबुनों के बक्से भी वहाँ मेजों पर पड़े हुए थे - साधारण साबुन, घरेलू साबुन, बच्चों का साबुन, औद्योगिक साबुन, खुशबूदार नहाने का साबुन, आकर्षक काग़ज़ों में लिपटे हुए साबुन।

घोर सन्नाटे में अधिवक्ता ने अपना भाषण जारी रखा। अपराधी तनावभरी मुद्रा में बैठे थे। रिबेनट्रोप चेहरे पर दर्द की आकृति बनाये, होंठ काटता हुआ आँखें नचा रहा था। गोरिंग कटु मुद्रा में नोट लिख-लिखकर अपने वकील को देता जा रहा था। स्ट्राइकर खाँस रहा था और उन्मादी ढंग से खो-खो कर रहा था। दुबला शाख्ट फिर बेहोश-सा हो रहा था और उसका आवेशहीन, नृशंस बुलडोग जैसा चेहरा मोमिया और स्थिर था।

क्रुशिन्स्की और मैं पहले संवाददाता थे जो ओस्वाइसिम शिविर में गये थे - तब उसे जर्मन औश्विट्ज़ से ही पुकारा जाता था। हम अपनी सेना के ठीक पीछे हवाई जहाज़ से वहाँ पहुँचे थे जबकि यह मृत्यु शिविर बदस्तूर अपने व्यवस्थित ढंग से चल रहा था। हमने गोदामों में इन्सानों के बाल सहेज कर बण्डलों में बँधे रखे देखे थे, बिल्कुल रवाना कर दिये जाने के लिए तैयार बण्डल और ढेरियाँ। हमने वे बच्चे देखे थे जिन पर डॉक्टरों ने घृणित प्रयोग किये थे। हमने दो रूसी युद्धबन्दियों से भेंट भी की थी जिन पर बर्बर डॉक्टरों ने प्रयोग किया था कि कड़ी ठण्डक में मानव शरीर कैसे काम करता है - उन्हें धीरे-धीरे ठण्डा कर दिया जाता था और वे बेहोश हो जाते थे। उसके बाद उन्हें धीरे-धीरे होश में ले आया जाता था। यह सब हमारी स्मृति में अब भी ताज़ा था, पर इन 'कारख़ानों' के माल को देखकर हम बिल्कुल टूट गये, वह माल जो इन्सान के हाड़-मांस से बना था। मेरे गले में मतली होने लगी और मैं चाहता था कि कूद कर अदालत से बाहर चला जाऊँ।

सच बात तो यह है कि यह सब हमारे लिए नया नहीं था। अमरीकी अभियोग पक्ष ने पहले ही रायख बैंक के अध्यक्ष और युद्ध अर्थव्यवस्था के मुख्य आयुक्त वाल्टर फंक के ख़िलाफ़ सबूत पेश किया था - वे निर्देश जिनमें उसने कहा था कि बन्दी शिविरों में उसकी भेजी टोलियाँ सभी बन्दियों के दाँतों से सोना और प्लैटिनम निकाल लें और उसका जाब्ते से हिसाब करके तिजोरियों में रख दिया जाये। हमें मालूम था कि रायख बैंक की इन क़ीमती धातुओं से कितनी ज़्यादा 'राजस्व आय' होती थी। वह सबूत भी ख़ौफ़नाक था, पर उसे तो सुना भी जा सकता था। लेकिन संयत, व्यावसायिक ढंग से साइमण्ड मजूर ने लिखा था, ''इन्सान की खाल पर बाल नहीं होते - और उसे कमाने-पकाने में बहुत आसानी रहती है, जानवरों की खाल की तुलना में इन्सान की खाल पकाने में कई प्रक्रियाओं की बचत हो जाती है... 'या' ठण्डा करने के बाद माद्दा साँचों में डाल दिया जाता है और साबुन तैयार हो जाता है।''

मैंने पहली बार देखा कि तीनों कुकरीनिक्सी स्तब्ध बैठे हैं। उनके ड्राइंग के फ़ोल्डर सामने रखे हैं और उनकी पेन्सिलें थमी हुई हैं।

यूरी कोरोल्कोव ने फुसफुसाकर किसी से कहा - ''दाँते का 'नरक' (इन्फ़र्नो) इसके सामने तो संगीत नाटिका ही लगता।'' वह फुसफुसाया था, पर अदालत इतनी नि:शब्द थी कि तीन पंक्ति दूर बैठे हमने उसे सुन लिया।

अदालत से हम लोग मौन उठ पड़े।

गाड़ी में बैठते हुए मिखाइल गस ने कहा - ''तुम जानते हो, अब मैं कभी गोश्त नहीं खा पाऊँगा।''

सेम्योन नरिन्यानी ने दुख भरा व्यंग्य किया - ''इस तर्क से तो साबुन से नहा भी नहीं सकेंगे।''

हमारी दुभाषिया माया की हालत सचमुच खराब थी। हिलती-डोलती गाड़ी में बैठी व रोती-बिसूरती जाती, होंठ काटती, घबरायी हुई उन्मादग्रस्त-सी लग रही थी, उसकी बग़ल में बैठी टाइपिस्ट उसकी नाक के नीचे कोई तेज़ गन्ध वाला सूँघने का मसाला रखे हुए थी।

कम-से-कम, उस दिन हम लोगों की नींद और भूख सचमुच हराम हो गयी।

अनुवाद: कृष्णकुमार मिश्र

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

मुनाफ़े के गोरखधन्धे में बलि चढ़ता विज्ञान और छटपटाता इन्सान

कहने को तो विज्ञान मानव का सेवक है लेकिन पूँजीवाद में यह मात्र मुनाफ़ा कूटने का एक साधन बनकर रह गया है। मुनाफ़े की कभी न मिटने वाली भूख से ग्रस्त यह मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था मानव के साथ-साथ मानवीय मूल्य और मानवीय संवेदनाओं को भी निरन्तर निगलती जा रही है। विज्ञान की ही एक विधा चिकित्सा विज्ञान का उदाहरण हम देख सकते हैं। विज्ञान की किसी भी अन्य विधा की तरह चिकित्सा विज्ञान ने भी पिछले कुछ दशकों में अभूतपूर्व तरक़्क़ी की है और इसकी बदौलत हमने अभूतपूर्व उपलब्धियाँ हासिल की हैं और अनेक बीमारियों पर विजय पायी है तथा अनेक बीमारियों से लड़ने में हम सक्षम हुए हैं। लेकिन विज्ञान की अन्य धाराओं की तरह ही चिकित्सा विज्ञान भी पूँजीवाद के चंगुल में इस तरह से जकड़ा हुआ है कि उच्चतम मानवीय मूल्यों पर आधारित यह विज्ञान भी मात्र मुनाफ़ा कमाने का एक ज़रिया बनकर रह गया है। इस व्यवस्था में मरीज़ को मरीज़ नहीं बल्कि ग्राहक माना जाता है जिसको दवाएँ और इलाज बेचा जाता है। डॉक्टरों से लेकर दवा कम्पनियाँ और यहाँ तक कि इस व्यवसाय से जुड़े अधिकतर लोग मुनाफ़े की इस दलदल में बुरी तरह से धँसे हुए हैं।

इसी सन्दर्भ में कुछ दिन पहले की ख़बर है कि अमेरिका की एक दवा कम्पनी टूरिंग फ़ार्मा ने "डैराप्रिम" नामक एक दवा को बनाने और बेचने के अधिकार ख़रीदे हैं। यह दवा "टोक्सोप्लाज्मोसिस" नामक एक बीमारी व कुछ अन्य दवाओं के साथ एड्स के इलाज में इस्तेमाल की जाती है। लाखों एड्स पीड़ितों के लिए यह दवा संजीवनी की तरह काम करती है। इस दवा के अधिकार ख़रीदते ही इस कम्पनी ने पहला काम यह किया कि इस दवा की क़ीमत, जो पहले प्रति टेबलेट 13.50 डॉलर थी, अगले ही दिन बढ़ाकर 750 अमेरिकी डॉलर प्रति टेबलेट कर दी। मरीज के इलाज पर होने वाला ख़र्चा जो पहले महज़ 1130 डॉलर था, बढ़कर 63000 डॉलर हो गया है। इस हिसाब से अगर एक साल के इलाज का ख़र्चा देखें तो यह अब 600000 डॉलर यानी तकरीबन 39000000 रुपये हो जाता है। कम्पनी के सीईओ मार्टिन श्क्रेली ने इस बढ़ोत्तरी के बारे में बेशर्मी से कहा कि उसको अपनी कम्पनी के शेयरहोल्डर्स के हितों का ध्यान रखना है। ज़ाहिर है कि लोगों के इलाज से इनको कोई मतलब नहीं है। बहरहाल 20%, 50%, 100% या 200% तक भी क़ीमतों में बढ़ोतरी अक्सर होती रहती हैं लेकिन इस बार तो इतनी बढ़ोत्तरी की गयी है कि इसका विरोध पूँजीवादी मीडिया में भी देखने को मिल रहा है। चौतरफ़ा थू-थू होने पर इतनी भारी-भरकम बढ़ोत्तरी को तो शायद यह कम्पनी कम भी कर दे, लेकिन बात सिर्फ़ एक कम्पनी या एक दवा की नहीं है। असल में यह वाक़या पानी में डूबे हुए हिमखण्ड का बहुत थोड़ा-सा दिखने वाला हिस्सा मात्र है। पूरा हिमखण्ड तो बहुत बड़ा है जो दिखायी ही नहीं देता। हाँ हम यह ज़रूर कह सकते हैं कि यह घटनाक्रम मुनाफ़े पर आधारित इस व्यवस्था को नंगा करने वाला एक क्लासिकीय उदाहरण है।

सर्वविदित है कि ये कम्पनियाँ नयी दवाओं की सिर्फ़ मार्केटिंग और बिज़नेस करती हैं कोई आविष्कार नहीं। इस तरीक़े से इन कम्पनियों को लगातार फ़ायदा ही हुआ है। इनका यह फ़ायदा ज़ाहिर है मेहनतकश जनता की जेब पर बहुत भारी पड़ता है। लेकिन विश्वव्यापी आर्थिक संकट के चलते दवा कम्पनियों के मालिक भी मुनाफ़ा घटने से परेशान हैं। आर्थिक संकट में बाज़ार मालों से अटे पड़े होते हैं और व्यापक जनता की सापेक्षिक क्रय शक्ति नहीं के बराबर होती है जिसकी वजह से अधिकतर माल बिक नहीं पाते, नतीजा पूँजीपति को मुनाफ़ा नहीं मिल पाता। पूँजी के फँसने के चलते व्यापक रूप से बेरोज़गारी फ़ैल जाती है जिससे संकट और ज़्यादा बढ़ जाता है। इसको दवा उद्योग से जोड़कर देखें तो हम पाते हैं कि किसी भी अन्य उत्पाद की तरह दवा भी एक माल होती है। जब आर्थिक संकट आता है तो हर क्षेत्र की तरह यह इसको भी चपेट में ले लेता है। आज के समय में दवा उद्योग भी संकट से गुज़र रहा है। दूसरी तरफ़ अगले एक दशक के अन्दर अधिकतर दवाओं के पेटेण्ट भी ख़त्म होने वाले हैं, तो एकाधिकार ख़त्म होने पर इनको अरबों डॉलर का अतिरिक्त नुक़सान भी होगा। इसलिए ये अब अपना ध्यान कम इस्तेमाल होने वाली दवाओं पर केन्द्रित कर रहे हैं जिनमें प्रतियोगिता बहुत कम है। साफ़ है कि इस क्षेत्र में मनमाने दाम बढ़ाकर मुनाफ़े को बरकरार रखने की कोशिश की जा रही है। टूरिंग फ़ार्मा का यह क़दम भी इसी बात को साबित करता है।

दवा के दामों में बढ़ोत्तरी का औचित्य सिद्ध करने की कोशिश करते हुए श्क्रेली कह रहा है कि क़ीमतों में यह वृद्धि दरअसल मरीजों के ही "फ़ायदे" के लिए है। श्क्रेली ने दलील दी है कि इस एक्स्ट्रा मुनाफ़े का इस्तेमाल "मेडिकल रिसर्च" के लिए किया जायेगा जिससे आगे चिकित्सा विज्ञान और मरीजों को ही फ़ायदा होगा। लेकिन जिस तरह का रिसर्च पूँजीपति करते हैं, वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। एड्स एक लाइलाज बीमारी है जिसकी अभी तक कोई भी ऐसी दवा नहीं बनी है जो इसको पूरी तरह से ख़त्म कर दे और न ही इसकी कोई वैक्सीन अभी तक ईजाद हो पायी है। इस दिशा में जो भी रिसर्च शुरू होता है वो कभी भी पूरा नहीं हो पाता क्योंकि या तो बड़े दवा निर्माता लॉबिंग करके उसको रुकवा देते हैं या फिर पैसे की कमी के चलते वह आगे बढ़ ही नहीं पाता। इसके पीछे कारण यह है कि अगर कोई वैक्सीन या ऐसी दवा ईज़ाद हो गयी जो इस बीमारी को जड़ से ख़त्म कर दे तो इन कम्पनियों का मुनाफ़ा कम हो जायेगा जो ये मरीज़ को सालों तक दवा बेच कर कमाती हैं।

यह सिर्फ़ एड्स की दवा की बात नहीं है। 2007 में अल्बर्टा यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने पाया था कि "डीसीए" नाम का एक यौगिक कैंसर की कोशिकाओं को प्राकृतिक रूप से ख़त्म करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। प्रयोगशाला में किये गये प्रयोगों में यह रसायन कई तरह के कैंसर से लड़ने में कारगर पाया गया था। कैंसर के अलावा भी माइटोकॉन्ड्रिया से सम्बन्धित कई बीमारियों में यह यौगिक लम्बे समय से प्रयोग किया जाता रहा है। इसके मानव शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव भी वैज्ञानिकों को पता थे। लेकिन इस यौगिक के साथ एक दिक्कत थी। इसका पेटेण्ट नहीं करवाया जा सकता था। ज़ाहिर है बिना पेटेण्ट के इसमें मुनाफ़ा बहुत कम होना था तो इसके आगे रिसर्च के लिए किसी कम्पनी ने पैसा नहीं दिया। कुछ समय तक तो शोधकर्ताओं ने ख़ुद के पैसे से शोध को जारी रखने की कोशिश की लेकिन पैसे की गम्भीर कमी के चलते पिछले दो साल से इस दिशा में कोई ख़ास काम नहीं हो पाया है। ख़ुद के रिसर्च के नाम पर बड़ी (यहाँ तक कि मध्यम श्रेणी की भी) दवा कम्पनियाँ सिर्फ़ इतना करती हैं कि छोटी बायोटेक कम्पनियों से मूल रिसर्च फ़ार्मूले ख़रीद लेती हैं और उनका पेटेण्ट करवा कर मनमानी क़ीमत पर बेचती हैं।

इन बातों से यह बिलकुल साफ़ दिखता है कि ये दवा कम्पनियाँ इलाज के लिए न तो कुछ ख़ास रिसर्च ही कर रही हैं और न ही रिसर्च पर पैसा लगा रही हैं। इनका मुख्य लक्ष्य जानलेवा बीमारियों के इलाज की दवा बनाना नहीं है बल्कि ऐसी दवाओं की मार्केटिंग करना और बेचना है जिनसे बीमारी लम्बी खिंचे। 1975 से 1997 के बीच में बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों ने 1233 नयी दवाएँ बाज़ार में उतारी थीं जिनमें से सिर्फ़ 1 प्रतिशत यानी 13 दवाएँ ही ऐसी थीं जो विकासशील देशों में लाखों लोगों की जानें लीलने वाले उष्णकटिबन्धीय रोगों के निदान में काम आती थीं। ज़ाहिर है इन देशों की मेहनतकश जनता की जान की कोई क़ीमत नहीं है क्योंकि वे लोग महँगी दवाओं को ख़रीदने की क्षमता नहीं रखते। असल में इन कम्पनियों की रिसर्च का मुख्य लक्ष्य "लाइफ़ स्टाइल डिज़ीज़" यानी मेहनत से दूर, आरामतलबी की ज़िन्दगी की वजह से होने वाली बीमारियों जैसे मोटापा और सौन्दर्य व विलासिता से सम्बन्धित रोगों जैसे गंजापन, झुर्रियाँ और नपुंसकता का इलाज ढूँढ़ना होता है। "मर्क" नामक एक बड़ी बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनी का भूतपूर्व प्रमुख रॉय वेज्लस इस बात को खुलेआम स्वीकार करता है कि स्टॉकहोल्डरों वाली कोई भी कम्पनी अपने रिसर्च को तीसरी दुनिया के देशों में होने वाली बीमारियों के इलाज को ढूँढ़ने पर नहीं लगा सकती क्योंकि इससे उसका "दीवाला" पिट जायेगा। एक दवा कम्पनी में काम करने वाले शोधकर्ता ए.जे. स्लेटर ने "रॉयल सोसाइटी ऑफ़ ट्रॉपिकल मेडिसिन एण्ड हाइजीन" नामक एक प्रतिष्ठित पत्रिका में छपे एक पर्चे में निष्कर्ष निकाला था कि किसी नयी एण्टीबायोटिक को बनाना बहुत महँगा पड़ता है और तीसरी दुनिया के देशों में उस दवा को बेचकर बहुत मुनाफ़ा नहीं कमाया जा सकता। साफ़ है कि इनके लिए मानवीय ज़िन्दगी से ज़्यादा क़ीमत मुनाफ़े की है।

अब अगर पेटेण्ट की बात करें तो विश्व व्यापार संगठन का एक समझौता है जो "बौद्धिक सम्पदा अधिकार के व्यापार-सम्बन्धी सम्बन्धी पहलुओं" पर आधारित है। अंग्रेज़ी में इसको TRIPS कहा जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के सभी सदस्यों के लिए इसको मानना अनिवार्य है। इस समझौते के अनुसार किसी भी कम्पनी को अपने पेटेण्ट का अधिकार 20 वर्ष तक मिलता है। मतलब सम्बन्धित दवा बनाने और बेचने के सर्वाधिकार उस कम्पनी के पास 20 साल तक रहते हैं। कहने को तो इस समझौते में एक अनुच्छेद यह भी डाला गया है कि आपातस्थिति में कोई सरकार उस देश में व्यापार करने वाली किसी भी कम्पनी को किसी पेटेण्ट दवा का फ़ॉर्मूला देने के लिए बाध्य कर सकती है और अमेरिका सहित यूरोप के तमाम विकसित पूँजीवादी देशों ने इस पर सहमति भी जतायी थी। लेकिन ये सभी साम्राज्यवादी देश भारत सहित एशिया, अफ़्रीका और लैटिन अमेरिका के विकासशील देशों पर लगातार दबाव बनाये रखते हैं ताकि इस अनुच्छेद का कभी प्रयोग ही न हो सके। ज़ाहिर है इस तरह का कोई भी प्रस्ताव, जो साम्राज्यवादियों के हितों के प्रतिकूल हो, कभी भी प्रयोग में आ ही नहीं सकता। 2001 में दक्षिण अफ़्रीका की सरकार ने जब एड्स की दवा सस्ती करने के लिए ऐसा करने की कोशिश की थी तो अमेरिका ने दक्षिण अफ़्रीका को आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने की धमकी देते हुए "व्यापार निगरानी सूची" में डाल दिया था। ज़ाहिर है कि अमेरिका या कोई भी साम्राज्यवादी देश पूँजीपतियों के मुनाफ़े की रक्षा के लिए कुछ भी कर सकता है।

इस प्रकार साफ़ देखा जा सकता है कि पूँजीवाद के लिए मुनाफ़ा ही एकमात्र मकसद होता है और पूँजीपति जो भी करते हैं, मुनाफ़े के लिए करते हैं। यह एक खुला रहस्य है कि मुनाफ़े के लिए दवा कम्पनियाँ किसी बीमारी के इलाज की बजाय उसको लम्बा खींचने के लिए पैसा लगाती हैं। दवाओं के दामों में बढ़ोत्तरी, पेटेण्ट के लिए कुत्ताघसीटी और नये रिसर्च को रोकने जैसी चीज़ें तो बहुत पहले से लगातार होती रही हैं लेकिन आज के समय में ये अपने नंगे और वीभत्स रूप में सबके सामने हैं। हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं कि इसका कारण पूँजीपतियों के मुनाफ़े की कभी न मिटने वाली हवस है। शुरुआती कुछ समय को छोड़ दिया जाये तो पूरे इतिहास में पूँजीवाद और पूँजीपति वर्ग एक परजीवी की तरह समाज से चिपटा रहा है जो समाज का ख़ून चूसकर ज़िन्दा रहता है और बदले में बीमारी के अलावा कुछ नहीं देता। इसकी एवज में हम अगर समाजवादी रूस और चीन के उदाहरण देखें तो हम पायेंगे कि योजनाबद्ध समाजवादी अर्थव्यवस्था के द्वारा किसी भी अन्य क्षेत्र के साथ ही चिकित्सा विज्ञान और जन स्वास्थ्य में भी अद्भुत चमत्कार किये जा सकते हैं। इन देशों के उदाहरणों से सिद्ध होता है कि अगर हम मुनाफ़े की बजाय इलाज पर ध्यान केन्द्रित करें तो क्या कुछ नहीं हासिल किया जा सकता। लेकिन उसके लिए ज़रूरी है कि गली-सड़ी इस परजीवी व्यवस्था को उखाड़ फेंका जाये और समता पर आधारित मेहनतकश के लोक स्वराज यानी समाजवादी व्यवस्था का निर्माण किया जाये। समाजवाद में मुनाफ़े पर टिकी कम्पनियों का राष्ट्रीकरण करके उनको मेहनतकश वर्ग के नियन्त्रण में कर दिया जायेगा। मानवीय मूल्यों पर आधारित चिकित्सा व्यवसाय और रिसर्च को पूँजी के चंगुल से छुड़ाकर मुक्त कर दिया जायेगा। तब विज्ञान की अन्य धाराओं की तरह चिकित्सा विज्ञान भी किसी के मुनाफ़े का गुलाम न रहकर मानव का सेवक बन जायेगा।

– नवमीत

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक: सुखविन्दर, अभिनव • सम्पाकीय पता: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006